श्रीवीतरागाय नमः ।

श्री जैनव्रत–कथासंग्रह ।

संशोधक और लेखकः—

स्वर्गीय धर्मरत्न पंडित दीपचन्दजी वर्णी [नरसिंहपुरनिवासी]

प्रकाशक —

मूलचन्द किसनदास कापडिया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय, गांधीचौक, कापडियाभवन–सूरत ।

चतुर्थावृत्ति] वीर सं० २४७१ [प्रति ५००

"जैनविजय" प्रिंटिंग प्रेस–सूरतमें मूलचंद किसनदास कापडियाने मुद्रित किया ।

मूल्य—रु० १–८–०.

प्रस्तावना।

जैन धर्ममें अनेक प्रकारके व्रत करनेके विधान हैं तथा उन सब व्रतोंकी विधि व उनके करनेसे क्या २ फल मिलते हैं उनको बतानेवाली उन व्रतोंकी कथाएं प्रचलित है, परन्तु वे प्राय कवितामें होनेसे तथा एकसाथ न मिलनेसे बडी असुविधा थी, जिसको दूर करनेके लिये हमने २६ वर्ष हुए गुजराती, हिंदी व मराठी भाषाकी गद्य अथवा पद्य कथाएं सग्रहीत करके उन्हें सरल हिन्दी भाषामें श्री० धर्मरत्न प० दीपचन्दजी वर्णीसे लिखवाकर प्रकट की थी। उनके बिक जानेपर वीर स० २४५२ में फिर उन्हींसे आवश्यक सशोधन कराकर उसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट की थी, उसके भी खतम हो जाने पर इसकी तीसरी आवृत्ति एक कथा और बढाकर वीर स० २४६४ में प्रकट की थी वह भी १ सालसे खतम हो जानेसे इसकी यह चतुर्थ आवृत्ति कागजकी असह्य महगाई व छापनेकी असुविधा होने पर भी प्रकट की जाती है।

इस ग्रन्थमें कुल ३० कथाओंका सग्रह हो सका है। यदि और भी कथाएं मिल सकेंगी तो आगामी आवृत्तिमें वे भी सम्मिलित की जायेंगी। बिल्कुल निस्वार्थ वृत्तिसे ऐसे कई ग्रन्थोंका सपादन करनेवाले धर्मरत्न प० दीपचन्दजी वर्णीका उपकार हम कभी नहीं भूल सकते। पूज्य वर्णीजीका स्वर्गवास वीर स० २४६२ फाल्गुन वद २ को अहमदाबादमें हो गया है। अत अब आपकी लेखनी व उपदेशसे जैन समाज वचित रहेगा।

हमने इसबार भी "जैनमित्र" द्वारा सूचना प्रकट की थी कि उपरोक्त ३० व्रतकथाओंके अतिरिक्त और भी व्रतकथाएं लिखित या मुद्रित गद्य या पद्यमें किसीके जाननेमें हों तो हमें सूचित करें व भेज दें, इस परसे हमें कोई भी नवीन व्रतकथा तो नहीं मिली लेकिन श्री० प० बारेलालजी जैन राजवैद्य, पठा द्वारा १४४ दि० जैन व्रतकथाओंकी सूची मिली लेकिन उनकी विधि व प्रकट व्रत कथाओंके सिवाय कोई नवीन व्रतकथा नहीं मिली तौभी हम प्रस्तावनामें इन १४४ व्रतकथाओंकी सूची नीचे प्रकट की जाती है जिससे कि इन कथाओंकी खोज हो सके —

१४४ व्रतकथाओंकी सूची—

अष्टाह्निका	सोलहकारण	दशलक्षण	रत्नत्रय	पुष्पाञ्जलि	मुष्टिविधान	मकुट–हृदय	निन्यरत
पट्‌रसी	ज्येष्ठ जिनवर	रविव्रत	णमोकारपैंतीसी	नवकारव्रत	चौबीस तीर्थंकर	नपनक्रियाव्रत	कर्मचूरव्रत
समकित चौबीसी	भावना पच्चीसी	पल्यविधान	नक्षत्रमाला	लब्धिविधान	सतकुम्भ	मध्यसिंहनि क्रीडित	बृहत्सिंहनि क्रीडित
भाद्रवनसिंहनिःक्रीडित	लघुसिंहनिःक्रीडित	त्रिगुणसार	बारहसैंचौतीसी	सर्वतोभद्र	महासर्वतोभद्र	दुःखहरणव्रत	जिनपूजापुरंदर
धर्मचक्रव्रत	बृहद्धर्मचक्रव्रत	बृहत् जिनेन्द्र गुणसंपत्ति	लघुजिनेन्द्रगुणसंपत्ति	बृहत्सुखसंपत्ति	लघुसुखसंपत्ति	रुद्रवसन्त	शीलकल्याणक
श्रुतकल्याणक	चतुकल्याणक	लघुकल्याणक	मध्यकल्याणक	श्रुतस्कंध	श्रुतज्ञान	श्रुतज्ञानतर	पंचश्रुतिज्ञान
ज्ञानपचीसी	बृहद्रत्नावलि	मध्यरत्नावलि	लघुरत्नावलि	बृहद्मुक्तावलि	मध्यमुक्तावलि	लघुमुक्तावलि	एकावलि
एकावलिव्रत	द्विकावलिव्रत	लघुद्विकावलिव्रत	बृहत्कनकावलिव्रत	लघुकनकावलिव्रत	बृहद्मृदंगमध्यव्रत	लघुमृदंगमध्यव्रत	मुरजमध्यव्रत
वज्रमध्यव्रत	मेरुपंक्तिव्रत	अरैने धवन	मेघमालाव्रत	सुखकरणव्रत	समवशरणव्रत	आकाशपंचमीव्रत	अखैदरैंव्रत
निर्दोषसप्तमीव्रत	चन्दनषष्ठीव्रत	सुगंधदशमीव्रत	अनंतचतुर्दशीव्रत	श्रवणद्वादशीव्रत	श्वेतपंचमीव्रत	शीलव्रत	सर्वार्थसिद्धिव्रत
तीनचौबीसीव्रत	जिनमुखावलोकन	मुकुटसप्तमीव्रत	नवनिधिव्रत	अशोकरोहिणी	कोकिलापंचमीव्रत	रत्नमणिव्रत	कर्मनिर्जराव्रत
कर्मचूरव्रत	कर्म दहन	अनस्तमीव्रत	निर्जरपंचमीव्रत	कवलचन्द्रायनव्रत	चिनरात्रिव्रत	बारहबिजोराव्रत	ऐसोनवव्रत
एकोदशव्रत	वजिकव्रत	श्रुतिपंचमीव्रत	कृष्णपंचमीव्रत	दरयअष्टमी	लक्षणपंक्ति	इषरसीव्रत	बाराहव्रत
पंचअष्टमीव्रत	नंदीश्वर व्रत	विमानपंक्तिव्रत	परमेष्ठीगुणव्रत	शिवकुमारवेला	तीर्थंकरवेला	मौनव्रत	लघुपंचकल्याणक
निर्वाणकल्याणकवेला	बृहत्पंचकल्याणक	धनदकलश	फलचतुर्दशी	मोक्षसप्तमी	रोटतीजव्रत	शीलसप्तमी	वीरशासनजयंती
बीजअतिव्रत	रक्षाबंधनव्रत	दीपमालिका	क्षमावणी	लघुचौतीसा	पंचपौरियाव्रत	चन्दनषष्ठी	कौमारसप्तमी
मनचिन्तीअष्टमीव्रत	सौभाग्यदशमी	दशमिनिभानी	चमकदशमी	छहारदशमिव्रत	तम्बोलदशमी	पानदशमी	फूलदशमी
फलदशमी	दीपदशमी	धूपदशमी	शावदशमी	योनदशमी	दण्डदशमी	वासुदशमीव्रत	भण्डारदशमी

उपरोक्त १४४ व्रतोंमेंसे ३० की विधि तो इस ग्रन्थमें है लेकिन शेष व्रतोंकी विधि तथा वे किन२ दिनोंमें किये जाते हैं। यह जिनको मालूम हो हमें लिख भेजेंगे तो वे तथा कोई नवीन कथा मिलेगी तो वे भी आगामी आवृत्तिमें प्रकट करेंगे।

विशेषः—हरएक भाई व बहिन समयानुसार कोई न कोई जैन व्रत करते ही रहते हैं तब उस व्रतकी कथाका पाठ करनेकी आवश्यकता होती है, इसलिये इस ग्रन्थकी एक२ प्रति हरएक मन्दिर व गृहमें होनेकी आवश्यकता है। आशा है यह कथाग्रन्थ व्रतादि

करनेवालों तथा सामान्य स्वाध्याय करनेवालोंको भी बहुत उपयोगी होगा। यह कथासमह शास्त्राकार होने पर भी इस बार इसकी जिल्द बना दी है, ताकि इसके पृष्ठ गुम न हो सकें और पढ़नेवालोंको सुभीता रहे।

सूरत
ज्येष्ठ सुदी ६,
ता० १५-६-४५

जैन जातिसेवक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

व्रतकथा-सूची।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्य ॥

जैन व्रत कथासंग्रह ।

पीठिका ।*

प्रणमि देव अर्हन्तको, गुरु निर्ग्रंथ मनाय । नमि जिनवाणी व्रत कथा, कहूं स्वपर सुखदाय ॥



अनन्तानन्त आकाश (लोकाकाश) के ठीक मध्यभागमें ३४३ घन राजू प्रमाण क्षेत्रफलवाला अनादिनिधन यह पुरुषाकार लोकाकाश है जो कि तीन प्रकारके वातवलयों अर्थात् वायु (घनोदधि, घन और तनुवातवलय) से घिरा हुआ अपने ही आधार आप स्थित है।

यह लोकाकाश ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक, इस प्रकार तीन भागोंमें बटा हुआ है। इस (लोकाकाश) के बीचोंबीच १४ राजू ऊंची और १ राजू चौड़ी लम्बी चौकोर स्तम्भवत् एक त्रस नाड़ी है। अर्थात् इसके बाहर त्रस जीव (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव) नहीं रहते हैं। परन्तु एकेन्द्रिय जीव स्थावर निगोद तो समस्त लोकाकाशमें त्रस नाड़ी और उससे बाहर भी वातवलयों पर्यंत रहते हैं। इस त्रस नाड़ीके ऊर्ध्व भागमें सबसे ऊपर तनु वातवलयके अन्तमें समस्त कर्मोंसे रहित अनंतदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्यादि अनन्त गुणोंके धारी, अपनी अपनी अवगाहनाको लिये हुए अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान हैं। उससे नीचे अहमिन्द्रोंका निवास है, और फिर सोलह स्वर्गोंके देवोंका निवास है। स्वर्गोंसे नीचे मध्यलोक समझा जाता है। इस मध्यलोकके ऊर्ध्व भागमें सूर्य चन्द्रमादि ज्योतिषी देवोंका निवास है। (इन्हींके

* यह पीठिका आदिसे अंत तक प्रत्येक कथाके आरंभमें पढ़ना चाहिये। और इसके पढ़नेके पश्चात् ही कथाका प्रारम्भ करना चाहिये।

चलने अर्थात् नित्य सुदर्शन आदि मेरुओंकी प्रदक्षिणा देनेसे दिन रात और ऋतुओंका भेद अर्थात् कालका विभाग होता है)। फिर नीचेके भागमें पृथ्वीपर मनुष्य तिर्यंच पशु और व्यंतर जातिके देवोंका निवास है। मध्यलोकसे नीचे अधोलोक (पाताल लोक) है। इस पाताल लोकके ऊपरी कुछ भागमें व्यंतर और भवनवासी देव रहते हैं और शेष भागमें नारकी जीवोंका निवास है।

ऊर्ध्व लोकवासी देव, इन्द्रादि तथा मध्य व पातालवासी (चारों प्रकारके) इन्द्रादि देव तो अपने पूर्व संचित पुण्यके उदयजनित फलको प्राप्त हुए इन्द्रिय विषयोंमें निमग्न रहते हैं। अथवा अपनेसे बड़े ऋद्धिधारी इन्द्रादि देवोंकी विभूति व ऐश्वर्यको देखकर सहन न कर सकनेके कारण आर्तध्यान (मानसिक दुःखोंमें) निमग्न रहते हैं और इस प्रकार वे अपनी आयु पूर्णकर वहांसे चयकर मनुष्य व तिर्यंचादि गतिमें स्व स्व कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार पातालवासी नारकी जीव भी निरन्तर पापके उदयसे परस्पर मारण, ताडन, छेदन, भेदन, वध, बन्धनादि नानाप्रकारके दुःखोंको भोगते हुए अत्यन्त आर्त व रौद्र ध्यानसे आयु पूर्ण करके मरते हैं और स्व स्व कर्मानुसार मनुष्य व तिर्यंच गतिको प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य—ये दोनों (देव तथा नरक) गतियां ऐसी हैं कि इनमेंसे बिना आयु पूर्ण हुए न तो निकल सकते हैं और न वहांसे सीधे मोक्ष ही प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि इन दोनों गतिके जीवोंका शरीर वैक्रियक है, जो कि अतिशय पुण्य व पापके कारण उनको उसका फल सुख किंवा दुःख भोगनेके लिये ही प्राप्त हुआ है। इस लिये इनसे इन पर्यायोंमें चारित्र धारण नहीं होसक्ता, और चारित्र बिना मोक्ष नहीं होता है। इसलिये इन गतियोंके जीवोंको वहांसे निकलकर मनुष्य वा तिर्यंचगतियोंमें आना ही पड़ता है।

तिर्यंच गतिमें भी एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चौइंद्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय जीवोंको तो मनके अभावसे सम्यग्दर्शन ही नहीं हो सक्ता है और बिना सम्यग्दर्शनके सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी नहीं होता है। तथा बिना सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रके मोक्ष नहीं होता है। रहे सैनी पंचेन्द्रिय जीव, सो इनको सम्यक्त्व होजानेपर अप्रत्याख्याना

वरण कषायके क्षयोपशम होनेसे एकदेश व्रत हो सकता है परन्तु पूर्ण व्रत नहीं। तब मनुष्य गति ही एक ऐसी गति ठहरी, कि जिसमे यह जीव सम्यक्त्व सहित पूर्ण चारित्रको धारण करके अविनाशी मोक्ष-सुखको प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंका निवास मध्यलोक हीमे है, इसलिये मनुष्य क्षेत्रका कुछ संक्षिप्त परिचय देकर कथाओंका प्रारम्भ करेंगे।

लोकाकाशमे मध्यमे १ राजू चौड़ा और ७ राजू लम्बा मध्यलोक है जिसमें त्रस जीवोंका निवास १ राजू लम्बे और १ राजू चौड़े क्षेत्र हीमे है (मध्यलोकका आकार □□□○□□□)। इस १ राजू मध्यलोकके क्षेत्रमे जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र आदि असंख्यात द्वीप और समुद्र चूड़ीके आकारवत् एक दूसरेको, घेरे हुए द्वीपसे दूना समुद्र और समुद्रसे दूना द्वीप, इस प्रकार दूने २ विस्तारवाले है।

इन असंख्यात द्वीप समुद्रोंके मध्यमे थालीके आकार गोल एकलाख महायोजन* व्यासवाला जम्बूद्वीप है। इसके आसपास लवणसमुद्र, फिर धातकी खंड द्वीप, फिर कालोदधि समुद्र, और फिर पुष्कर द्वीप बीचो बीच एक गोल भीतके आकार वाले पर्वतसे (जिसे मानुषोत्तर पर्वत कहते हैं) दो भागोंमे बटा हुआ है। इस पर्वतके उस ओर मनुष्य नहीं जासक्ता है। इस प्रकार जम्बू, धातकी, और पुष्कर आधा (ढाईद्वीप) और लवण तथा कालोदधि ये दो समुद्र मिलकर ४५ महा योजन व्यासवाला क्षेत्र मनुष्यलोक कहलाता है और इतने ही क्षेत्रसे मनुष्य रत्नत्रयको धारण करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

जीव कर्मसे मुक्त होने पर अपनी स्वभाविक गतिके अनुसार ऊर्ध्वगमन करते हैं। इसलिये जितने क्षेत्रसे जीव मोक्ष प्राप्त करके ऊर्ध्वगमन करके लोक-शिखरके अन्तमे जाकर धर्म द्रव्यका आगे अभाव होनेके कारण अधर्म द्रव्यकी सहायसे ठहर जाते है, उतने (लोकके अन्तवाले) क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र कहते है। इस प्रकार सिद्धक्षेत्र भी पैंतालीस लाख योजनका ही ठहरा।

इस ढाईद्वीपमें पाच मेरु और तिन सम्बन्धी बीस विदेह तथा पाच भरत और पाच ऐरावत क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रोंमेंसे जीव रत्नत्रयसे कर्म नाश कर सकते है। इनके सिवाय और कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहा भोगभूमि (युगलियों) की रीति प्रचलित

* महायोजन=चार हजार मलका होता है।

है, अर्थात् वहाके जीव मनुष्यादि, अपनी सम्पूर्ण आयु विषय भोगो हीमे विताया करते है। ये भोग भूमिया उत्तम मध्यम और जघन्य ३ प्रकारकी होती है और उनकी क्रमसे तीन, दो और एक पल्यकी बड़ी बड़ी आयु होती है। आहार बहुत कम होता है। ये सब समान (राजा प्रजाके भेद रहित) होते है। उनको सब प्रकारकी भोग सामग्री कल्पवृक्षो द्वारा प्राप्त होती है, इसलिये वे व्यापार धन्धा आदिकी झझटसे बचे रहते है। इस प्रकार वे (वहाके जीव) आयु पूर्ण कर मन्द कषायोके कारण देवगतिको प्राप्त होते है। भरत और ऐरावत क्षेत्रोके आर्य खडोमे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (कल्प काल) के छ काल (सुखमा सुखमा, सुखमा, सुखमा दुखमा, दुखमा सुखमा, दुखमा, और दुखमा दुखमा) की प्रवृत्ति होती है सो इनमे भी प्रथमके तीन कालोंमे तो भोगभूमिकी ही रीति प्रचलित रहती है, शेष तीन काल कर्मभूमिक होते है, इसलिये इन शेष कालोमे चौथा (दुखमा सुखमा) काल है, जिसमे त्रेशठ शलाका आदि महापुरुष उत्पन्न होते है। पाचवें और छठें कालमे क्रमसे आयु, काय, बल, वीर्य घट जाता है और इसलिये इन कालोंमे कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। विदेह क्षेत्रोमे ऐसी कालचक्रकी फिरन नहीं होती है। वहा तो सदैव चौथा काल रहता है। और कमसे कम २० तथा अधिकसे अधिक १६० श्री तीर्थकर भगवान तथा अनेको सामान्यकेवली और मुनि श्रावक आदि विद्यमान रहते है और इसलिये सदैव ही मोक्षमार्गका उपदेश व साधन रहनसे जीव मोक्ष प्राप्त करते रहते है। जिन क्षेत्रोंमे रहकर जीव आत्म धर्मको प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकते है, अथवा जिनमे मनुष्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्यादि द्वारा आजीविका करके जीवन निर्वाह करते है, वे कर्मभूमि कहलाते हैं।

इस मनुष्य क्षेत्रके मध्य जो जम्बूद्वीप है उसके बीचोंबीच सुदर्शन मेरु नामका स्तम्भाकार एक लाख योजन ऊँचा पर्वत है। इस पर्वतपर सोलह अकृत्रिम जिन मन्दिर है। यह वही पर्वत है कि जिस पर भगवान्‌का जन्माभिषेक इन्द्रादि देवो द्वारा किया जाता है। इसके सिवाय ६ पर्वत और भी दण्डाकार (भीतके समान) इस द्वीपमें हैं, जिनके कारण यह द्वीप सात क्षेत्रोंमे बट गया है। ये पर्वत सुदर्शन मेरुके उत्तर और दक्षिण दिशामे आडे पूर्वसे पश्चिम तक समुद्रसे मिले हुए हैं। इन सात क्षेत्रोंमेसे दक्षिणकी ओरसे सबके अन्तके क्षेत्रको भरतक्षेत्र कहते हैं। इस भरतक्षेत्रमे भी बीचमे विजयार्द्ध पर्वत

पड जानेसे यह दो भागोमें बंट जाता है। और उत्तरकी ओर जो हिमवन् पर्वतपर पद्मद्रह है, उससे गङ्गा और सिंधु दो महा नदियां निकलकर विजयार्द्ध पर्वतको भेदतीं हुई पूर्व और पश्चिमसे बहती हुई दक्षिण समुद्रमें मिलती हैं। इससे भरत क्षेत्रके छः खंड होजाते हैं, इन छः खण्डोंमसे सबसे दक्षिणका बीच वाला खण्ड आर्यखण्ड कहाता है और शेष ५ म्लेच्छ खण्ड कहाते हैं। इसी आर्य खण्डमें तीर्थंकरादि महापुरुष उत्पन्न होते हैं। यही आर्य खंड कहाता है।

इसी आर्य खंडमें मगध नामका एक प्रदेश है, जिसे आज कल बिहारप्रांत कहते हैं।

इस मगधदेशमें राजगृही नामकी एक बहुत मनोहर नगरी है। और इस नगरीके समीप विपुलाचल, उदयाचल आदि पंच पहाडियां हैं तथा पहाडियोंके नीचे कितनेक उष्ण जलके कुंड बने हैं। इन पहाडियों व झरनोंके कारण नगरकी शोभा विशेष बढ गई है। यद्यपि काल दोषसे अब यह नगर उजाड होरहा है परन्तु उसके आसपासके चिह्न देखनेसे प्रकट होता है कि किसी समय यह नगर अवश्य ही बहुत उन्नत होगा।

आजसे ढाईहजार वर्ष पहिले अन्तिम (चौबीसवें) तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामीके समयमें इस नगरमें महामंडलेश्वर महाराजा श्रेणिक राज्य करता था। यह राजा बडा प्रतापी न्यायी और प्रजापालक था। वह अपनी कुमार अवस्थामें पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे अपने पिता द्वारा देशसे निकाला गया था और भ्रमण करते हुए एक बौद्ध साधुके उपदेशसे बौद्धमतको स्वीकार कर चुका था। वह बहुत काल तक बौद्ध मतावलम्बी रहा। जब यह श्रेणिककुमार निज बाहु तथा बुद्धिबलसे विदेशोंमें भ्रमण करके बहुत विभूति व ऐश्वर्य सहित स्वदेशको लौटा, तो वहाके निवासियोंने इन्हें अपना राजा बनाना स्वीकार किया। इस समय इनके पिता उपश्रेणिक राजाका स्वर्गवास हो चुका था, और इनके एक भाई चिलातक नामके अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य करते थे। इनके राज्य कार्यमें अनभिज्ञ होने तथा प्रजा पर अत्याचार करनेके कारण प्रजा अप्रसन्न हो गई थी, इसीसे सब प्रजाने मिलकर राज्यच्युत कर दिया था। ठीक है, राजा प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता, वह एक प्रकारसे प्रजाका रक्षक (नौकर) ही होता है, क्योंकि प्रजाके द्वारा ही राजाको द्रव्य मिलता है, अर्थात् उसकी जीविका प्रजाके आश्रित है, इसलिये वह प्रजा पर नीतिपूर्वक शासन कर सकता है न कि स्वेच्छाचारी होकर अन्याय

कर सकता है। उसका कर्तव्य है कि वह प्रजाकी भलाईके लिये सतत् प्रयत्न करे तथा उसकी यथासाध्य रक्षा व उन्नतिका उपाय करता रहे, तभी वह राजा कहलानेके योग्य हो सकता है और प्रजा भी तभी उसकी आज्ञाकारिणी हो सकती है। राजा और प्रजाका सम्बन्ध पिता और पुत्रके समान होता है, इसलिये जब जब राजाकी ओरसे अन्याय व अत्याचार हो जाते हैं, तब तब प्रजा अपना नया राजा चुन लिया करती है और उस अत्याचारी अन्यायी राजाको राज्यच्युत करके निकाल देती है। इसी नियमानुसार राजगृहीकी प्रजाने अन्यायी चिलात नामक राजाको निकाल कर महाराज श्रेणिकको अपना राजा बनाया और इस प्रकार श्रेणिक महाराज नीतिपूर्वक पुत्रवत् प्रजाका पालन करने लगे।

पश्चात् इनका एक और ब्याह राजा चेटककी कन्या चेलनाकुमारीसे हुआ। चेलना रानी जैनधर्मानुयायी थी और राजा श्रेणिक बौद्धमतानुयायी थे। इस प्रकार यह केरबेर (केला और बेरी) का साथ बन गया था, इसलिये इनमें निरन्तर धार्मिक वादविवाद हुआ करता था। दोनो पक्षवाले अपने अपने पक्षके मण्डन तथा परपक्षके खण्डनार्थ प्रबल प्रबल युक्तियां दिया करते थे। परन्तु "सत्यमेव जयते सर्वदा" की उक्तिके अनुसार अन्तम रानी चेलना ही की विजय हुई। अर्थात् राजा श्रेणिकने हार मानकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया और उसकी श्रद्धा जैन धर्ममें अत्यन्त दृढ हो गई। इतना ही नहीं किन्तु वह जैन धर्म, देव या गुरुओंका परम भक्त बन गया और निरन्तर जैन धर्मकी उन्नतिमें सतत् प्रयत्न करने लगा।

एक दिन इसी राजगृही नगरके समीप उद्यान (वन) में विपुलाचल पर्वत पर श्रीमद्देवाधिदेव परम भट्टारक श्री १००८ वर्द्धमानस्वामीका समवशरण आया, जिसके अतिशयसे वहांके वन उपवनोंमें छहों ऋतुओंके फूल फल एक ही साथ फूल और फलगये तथा नदी सरोवर आदि जलाशय जलपूर्ण हो गये। वनचर, नभचर व जलचर आदि जीव सानन्द अपने अपने स्थानोंमें स्वतन्त्र निर्भय होकर विचरने और क्रीडा करने लगे, दूर दूर तक रोग मरी व अकाल आदिका नाम भी न रहा, इत्यादि अनेकों अतिशय होने लगे। तब वनमाली उन फूल और फलोंकी डाली लेकर यह आनन्ददायक समाचार राजाके पास सुनानेके लिये गया और विनययुक्त भेट करके सब समाचार कह सुनाये।

राजा श्रेणिक यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने सिंहासनसे तुरन्त ही उतर कर विपुलाचलकी ओर मुँह

करके परोक्ष नमस्कार किया। पश्चात् वनपालको यथेच्छ पारितोषिक दिया और यह शुभ सम्वाद सब नगरमे फैला दिया। अर्थात् यह घोषणा करा दी कि—महावीर भगवानका समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया है, इसलिये सब नरनारी वन्दनाके लिये चलो और राजा स्वय भी अपनी विभूति सहित हर्षित मन होकर वन्दनाके लिये गया। जावेर मानस्थम्भ पर दृष्टि पड़ते ही राजा हाथीसे उतर पाच प्यादे चल समवशरणमे रानी आदि स्वजन पुरजनों सहित पहुचा और सब ठौर यथायोग्य वन्दना स्तुति करता हुआ, गन्धकुटीके निकट उपस्थित हुआ और भक्तिसे नम्रीभूत हो स्तुति करके मनुष्योंकी सभामे जाकर बैठ गया। और सब लोग भी यथायोग्य स्थानोंमे बैठ गये।

तब मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषी) जीवोंके कल्याणार्थ श्री जिनेन्द्रदेवके द्वारा मेघोकी गर्जनाके समान ॐकार रूपअनक्षरी वाणी (दिव्यध्वनि) हुई। यद्यपि इस वाणीको सब उपस्थित सभाजन अपनी अपनी भाषामे यथासम्भव निज ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके अनुसार समझ लेते है, तथापि गणधर (गणेश जो कि मुनियोकी सभामे श्रेष्ठ चार ज्ञानके धारी हैं) उक्त वाणीको द्वादशागरूप कथनकर भव्य जीवोको भेदभाव सहित समझाते है। सो उस समय श्री महावीरस्वामीके समवशरणमे उपस्थित गणनायक श्री गौतमस्वामीने प्रभुकी वाणीको सुनकर सभाजनोंको सात तत्व, नव पदार्थ, पचास्तिकाय इत्यादिका स्वरूप समझाकर रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र) रूप मोक्षमार्गका कथन किया, और सागार (गृहस्थ) तथा अनगार (साधु–गृहत्यागी) धर्मका उपदेश दिया, जिसे सुनकर निकट भव्य (जिनकी ससार–स्थिति थोड़ी रह गई है अर्थात् मोक्ष होना निकट रह गया है) जीवोंने यथाशक्ति मुनि अथवा श्रावकके व्रत धारण किये। तथा जो शक्तिहीन जीव थे और जिनको दर्शनमोहका उपशम व क्षय हुआ था सो उन्होने सम्यक्त्व ही ग्रहण किया। इस प्रकार जब वे भगवान धर्मका स्वरूप कथन कर चुके, तब उस सभामे उपस्थित परम श्रद्धालु भक्त राजा श्रेणिकने विनययुक्त नम्रीभूत हो श्री गौतमस्वामी (गणधर) से प्रश्न किया कि "हे प्रभु*

व्रतकी विधि किस प्रकार है और इस व्रतको किसने पालन किया तथा क्या फल पाया? सो कृपा कर कहो, ताकि हीन

*यहां शुभ स्थानोंमे जो कथा बांचना होवे उसीका नाम उच्चारण करना चाहिये।

शक्तिधारी जीव भी यथाशक्ति अपना कल्याण कर सकें और जिन धर्मकी प्रभावना होवे।

यह सुनकर श्री गौतमस्वामी बोले,—राजा! तुम्हारा यह प्रश्न समयोचित और उत्तम है, इसलिये ध्यान लगाकर सुनो। इस व्रतकी कथा व विधि इस प्रकार है—

(इति पीठिका।)

१—श्री रत्नत्रय व्रत कथा।

दाता सम्यक रत्नत्रय, गुरु शास्त्र जिनराय। कर प्रणाम वर्णूं कथा, रत्नत्रय सुखदाय॥ १॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इन बिन मुक्ति न होय। तार्मा प्रथमहिं रत्नत्रय, कथा सुनो भविलोय॥ २॥

जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें एक कच्छ नामका देश और वीतशोकपुर नामका नगर है। वहां एक अत्यन्त पुण्यवान वैश्रवण नामका राजा रहता था, जो कि पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करता था।

एक दिन वह (वैश्रवण) राजा वसंतऋतुमें क्रीडाके निमित्त सानन्द उद्यानमें यत्र तत्र विचर रहा था कि इतने हीमें उसकी दृष्टि एक शिलापर विराजमान ध्यानस्थ श्री मुनिराजपर पड़ी। सो तुरंत ही हर्षित होकर वह राजा श्री मुनिराजके समीप आया और विनययुक्त नमस्कार करके बैठ गया। श्री मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो उन्होंने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे—

यह जीव अनादिकालसे मोहकर्मवश मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करता हुआ पुनः पुनः कर्मबंध करता और संसारमें जन्म मरणादि अनेक प्रकार दुःखोंको भोगता है। इसलिये जबतक इस रत्नत्रय (जो कि आत्माका निज स्वभाव है) की प्राप्ति नहीं होजाती तबतक यह (जीव) दुःखोंसे छूटकर निराकुलता स्वरूप सच्चे सुख व शांतिको प्राप्त नहीं होसकता जो कि वास्तवमें इस जीवका हितकारी है। इसीलिये भगवानने "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है और सच्चा सुख मोक्ष अवस्था हीमें मिलता है, इस लिये मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करना मुमुक्षु जीवोंका परम कर्तव्य है।

(१) पुद्गलादि परद्रव्योंसे भिन्न निज स्वरूपका श्रद्धान (स्वानुभव) तथा उसके कारणस्वरूप सप्त तत्वों और सत्यार्थ देव गुरु व शास्त्रका श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन अष्ट अंग सहित और २५ मल दोष रहित धारण करना चाहिये अर्थात् जिन भगवानके कहे हुए वचनोंमें शङ्का नहीं करना, संसारके विषयोंकी अभिलाषा न करना, मुनि आदि साधर्मियोंके मलीन शरीरको देखकर ग्लानि न करना, धर्मगुरुकी सत्यार्थ तत्वोंकी यथार्थ पहिचान करना अर्थात् कुगुरु (रागी द्वेषी भेषी परिग्रही साधु व गृहस्थ) कुदेव (रागी द्वेषी भयकर देव) कुधर्म (हिंसापोषक क्रियाओं) की प्रशंसा भी न करना, धर्मपर लगते हुए मिथ्या आक्षेपोंको दूर करना और अपनी बड़ाई व परनिंदाका त्याग करना, सम्यक् श्रद्धान और चारित्रसे डिगते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेश तथा द्रव्यादि देकर किसी प्रकार स्थिर करना, धर्म और धर्मात्माओंमें निष्कपट भावसे प्रेम करना और सर्वोपरि सर्व हितकारी श्री दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा बताये हुये श्री पवित्र जिनधर्मका यथार्थ प्रभाव सर्वोपरि प्रकट कर देना, येही अष्ट अङ्ग हैं। इनसे विपरीत शङ्कादि आठ दोष, जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, धन, रूप, विद्या, और तप इन आठके आश्रित हो गर्व करना सो आठ मद, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु सेवक, कुदेव आराधक तथा कुधर्म धारक, ये छः अनायतन और लोकमूढता (देखादेखी बिना हिताहितका विचार किये प्रवर्तना) देवमूढता (लौकिक चमत्कारोंके कारण लोभमें फसकर रागी द्वेषी देवोंको पूजना) और पाखण्डि मूढता (कुलिंगी ठग आडम्बरधारी गुरुओंकी सेवा करना) इस प्रकार ये पचीस सम्यक्त्वके दूषण हैं। इनसे सम्यक्त्वका एकदेश घात होता है, इस लिये इन्हें त्याग देना चाहिये।

(२) पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय आदि दोषोंसे रहित जानना सो सम्यग्ज्ञान है।

(३) आत्माकी निज परिणति (जो वीतराग रूप है) में ही रमण करना, अर्थात् रागद्वेषादि विभाव भावों तथा क्रोधादि कषायोंसे आत्माको अलग करने व बचानेके लिये व्रत संयम, तपादिक करना सो सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इस रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गको समझकर और उसे स्वशक्ति अनुसार धारण करके, जो कोई भव्यजीव बाह्य तपाचरण धारण करता है वही सच्चे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होता है।

इसप्रकार रत्नत्रयका स्वरूप कहकर अब यह व्रत पालनेकी विधि कहते हैं—

भादों, माघ और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें, तेरस, चौदस और पूनम इसप्रकार तीन दिन यह व्रत किया जाता है और १२ को व्रतकी धारणा तथा प्रतिपदाको पारणा किया जाता है, अर्थात् १२ को श्री जिन भगवानकी पूजनाभिषेक करके एकाशन (एकभुक्त) करे और फिर मध्याह्नकालकी सामायिक करके उसी समयसे चारों प्रकारके (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार तथा विकथाओं और सब प्रकारके आरम्भोंका त्याग करे। इस प्रकार तेरस, चौदस और पूनम तीन दिन प्रोषध (प्रोषध उपवास) करे और प्रतिपदा (पडवा) को श्री जिनदेवका अभिषेक पूजनके अनन्तर सामायिक करके तथा किसी अतिथि वा दुःखित भुखितको भोजन कराकर, आप भोजन करे। इस दिन भी एकभुक्त ही करना चाहिये। इन व्रतोंके पाचों दिनोंमें समस्त सावद्य (पाप बढानेवाले) आरम्भ और विशेष परिग्रहका त्याग करके अपना समय सामायिक, पूजा, स्वाध्यायादि धर्मध्यानमें बितावे। इस प्रकार यह व्रत १२ वर्ष तक करके पश्चात् उद्यापन करे और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे, यह उत्कृष्ट व्रतकी विधि है। यदि इतनी शक्ति न होवे तो वेला करे या कांजी आहार करे तथा आठ वर्ष करके उद्यापन करे, यह मध्यम विधि है। और जो इतनी भी शक्ति न होवे तो एकासना करके करे और तीन ही वर्ष या ५ वर्ष तक करके उद्यापन करे, यह जघन्य विधि है। सो स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण कर पालन करे नित्यप्रति दिनमें त्रिकाल सामायिक तथा रत्नत्रय पूजन विधान करे और तीनवार इस व्रतका जाप्य जपे अर्थात् " ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः " इस मंत्रको १०८ बार जपे, तब एक जाप्य होती है। इस प्रकार व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करे। अर्थात् श्री जिन मंदिरमें जाकर महोत्सव करे। छत्र, चमर, झारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा, और ठमनी आदि मंगल द्रव्य चढावे, चन्दोवा बंधावे और कमसे कम तीन शास्त्र मंदिरमें पधरावे, प्रतिष्ठा करे, उद्यापनके हर्षमें विद्यादान करे, पाठशाला, छात्रावास, अनाथालय, औषधालय, पुस्तकालय, आदि संस्थाएं ध्रौव्यरूपसे स्थापित करे और निरन्तर रत्नत्रयकी भावना भाता रहे। इसप्रकार श्री मुनिराजने राजा वैश्रवणको उपदेश दिया सो राजाने सुनकर श्रद्धापूर्वक इस व्रतको यथाविधि पालन किया और पूर्ण अवधि होने पर उत्साह सहित उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन वह राजा एक बहुत बडे बडके वृक्षको जडसे उखडा हुआ देखकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर अन्त समय समाधिमरण कर अपराजित नाम विमानमें अहमिन्द्र हुआ और फिर वहासे चलकर मिथिलापुरीमें महाराजा कुभकरायके यहा, सुप्रभावती रानीके गर्भसे मल्लिनाथ तीर्थंकर हुये, सो पचकल्याणकको प्राप्त होकर अनेक भव्य जीवोको मोक्षमार्गमें लगाकर आप परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार वैश्रवण राजाने व्रत पालकर स्वर्गके व मनुष्योके सुखोको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया और सदाके लिये जन्म मरणादि दुःखोंसे छूटकर अविनाशी स्वाधीन सुखोको प्राप्त हुए। इसलिये जो नरनारी मन, वचन, कायसे इस व्रतकी भावना भाते है, अर्थात्–रत्नत्रयको धारण करते है वे भी राजा वैश्रवणके समान स्वर्गादि मोक्षसुखको प्राप्त होते है।

महाराज वैश्रवणने, रत्नत्रय व्रत पाल। लही मोक्ष लक्ष्मी तिनहिं, 'दीप' नमै त्रैकाल ॥ इति ॥

३–श्री दशलक्षण व्रत कथा।

उत्तमक्षमा मार्दवं, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, ज्ञान। त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य मिल ये दशलक्षण धर्म बखान।
ये स्वाभाविक आतमके गुण, जे नर धरै सुधी गुणवान। तिन पद वन्द्य कथा दशलक्षण, व्रतकी कहु सुनो मन आन ॥ १ ॥

धातकी खण्डद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें विशाल नामका एक नगर है। वहाका राजा प्रियकर नामका अत्यन्त नीति-निपुण और प्रजावत्सल था। रानीका नाम प्रियकरा था और इसके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्याका नाम मृगाकलेखा था।

इसी राजाके मन्त्रीका नाम मतिशेखर था। इस मन्त्रीके उसकी शशिप्रभा स्त्रीके गर्भसे कमलसेना नामकी कन्या थी।

इसी नगरके गुणशेखर नामके एक सेठके यहा उसकी शीलप्रभा नामकी सेठानीसे एक कन्या मदनवेगा नामकी हुई थी और लक्षभट नामक ब्राह्मणके घर उसकी चन्द्रभागा भार्यासे रोहिणी नामकी कन्या हुई थी।

ये चारों (मृगाकलेखा, कमलसेना, मदनवेगा और रोहिणी) कन्याए अत्यन्त रूपवान, गुणवान, तथा बुद्धिमान थी। वे सदैव धर्माचरणमें सावधान रहती थीं और इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा पाई थी। एक समय

प्रलापी न होनेसे सबका विश्वासपात्र होता है और सभारय सन्मान व सुखको प्राप्त होता है।

(५) शौचवान नर उपर्युक्त चारों धर्मोंको पालता हुआ अपने आत्माको लाभसे बचाता है और जो पदार्थ न्याय पूर्वक उद्योग करनेसे उनके क्षयोपशमके अनुसार उसे प्राप्त होते हैं उह उसीम संतोष करता है और कभी स्वप्नमें भी परधन हरण करनेके भाव इसके नहीं होते हैं। यदि अशुभकर्मके उदयसे इसे किसी प्रकारका कभी घाटा हो जाय अथवा और किसी प्रकारका द्रव्य चला जाय, तो भी यह दुखी नहीं होता और अपने कर्मोंका विपाक समझकर धैर्य धारण करता है परंतु अपने घाटेकी पूर्तिके लिये कभी किसी दूसरेको हानि पहुचानेकी चेष्टा नहीं करता है। इसको तृष्णा न होनेके कारण सदा आनंद रहता है और इसीलिये कभी किसीसे ठगाया भी नहीं जाता है।

(६) संयमी पुरुष भी उक्त पाचों व्रतोंको पालता हुआ अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोकता है। ऐसी अवस्थामें इस कोई पदार्थ इष्ट व अनिष्ट प्रतीत नहीं होते हैं, क्योंकि विषयानुरागताके ही कारण अपने ग्रहण योग्य पदार्थ इष्ट और आरोचक व ग्रहण न करने योग्य अनिष्ट माने जाते हैं, सो इष्टानिष्ट कल्पना न रहनेके कारण उनमें हेयोपादेय कल्पना भी नहीं रहती है, तब समभाव होता है। इसीसे यह समरसी आनन्दको प्राप्त करता है।

(७) तपस्वी पुरुष इंद्रियोंको वश करता हुवा भी मनको पूर्ण रीतिसे वश रखता है और उसे यत्र तत्र दौटनेसे रोकता है। किसी प्रकारकी इच्छा उत्पन्न नहीं होने देता है। जब इच्छा ही नहीं रहती तो आकुलता किस बातकी ? यह अपने ऊपर आनेवाले सब प्रकारके उपसर्गोंको धीरतापूर्वक सहन करनेमें उद्यमी व समर्थ होता है। वास्तवमें ऐसा कोई भी सुर नर वा पशु संसारमें नहीं जन्मा है, जो इस परम तपस्वीको उसके ध्यानसे किंचिन्मात्र भी डिगा सके। इसलिये ही इस महापुरुषके एकाग्रचितानिरोध रूप धर्म व शुक्लध्यान होता है जिससे यह अनादिसे लगे हुवे कठिन कर्मोंको अल्प समयमें नाश करके सच्चे सुखोंका अनुभव करता है।

(८) त्यागी पुरुषके उक्त सातो व्रत तो होते ही हैं किन्तु पुरुषका आत्मा बहुत उदार हो जाता है। यह अपने आत्मासे रागद्वेषादि भावोंको दूर करने तथा स्व पर उपकारके निमित्त आहारादि चारों दान देता है और दान देकर अपने

आपको धन्य व स्व सम्पत्तिको सफल हुई समझता है। यह कदापि स्वप्नमें भी अपनी ख्याति व यश नहीं चाहता और न दान देकर उसे स्मरण रखता अथवा कभी किसी पर प्रगट ही करता है। वास्तवमें दान देकर भूल जाना ही दानीका स्वभाव होता है। इससे यह पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है और मृत्युका समय उपस्थित होनेपर भी निराकुल रहता है। इसका चित्त धनादिमें फँसकर आर्त रौद्र रूप कभी नहीं होता और उसका आत्मा सद्गतिको प्राप्त होता है।

(९) आकिंचन्य–बाह्य आभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे ममत्व भावोंको छोड देनेवाला पुरुष सदैव निर्भय रहता रहता है। उसे न कुछ सम्हालना और न रक्षा करना पडती है। यहांतक कि वह अपने शरीर तकसे निस्पृह रहता है, तब ऐसे महापुरुषको कौन पदार्थ आकुलित कर सकता है, क्योंकि वह अपने आत्माके सिवाय समस्त पदार्थोंको और शुद्ध चैतन्य ऐसे भावोंके सिवाय समस्त पर भावों वा विभावोंको हेय अर्थात् त्याज्य समझता है। इसीसे कुछ भी ममत्व शेष नहीं रह जाता और समय समय असंख्यात व अनन्तगुणी कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है, इसीसे यह सुखी रहता है।

(१०) ब्रह्मचर्यधारी महा बलवान योद्धा सदैव उक्त नव व्रतोंको धारण करता हुआ, निरंतर अपने आत्मामें ही रमण करता है। वह बाह्य स्त्री आदिसे विरक्त रहता है, उसकी दृष्टिमें सब जीव संसारके समान प्रतीत होते हैं और स्त्री पुरुष व नपुंसकादिको वेद धर्मकी उपाधि जानता है। वह सोचता है कि यह देह हाड, मांस, मल, मूत्र, रुधिर, पीव आदि रागी चीजोंको सुहावना सा लगता है। यदि यह चामकी चादर हटा दी जाय अथवा वृद्धावस्था आ जाय तो फिर इसकी ओर देखनेको भी जी न चाहे इत्यादि, ऐसे घृणित शरीरमें क्रीडा करना क्या है? मानों विष्टा (मल) के कीडा वत् उसमें अपने आपको फसाकर चतुर्गतिके दुःखोंमें डालना है। इस प्रकार यह सुभट कामके दुर्जय किलेको तोडकर अपने अनन्त सुखमई आत्मामें ही विहार करता है। ऐसे महापुरुषका आदर सब जगह होता है और तब कोई भी कार्य संसारमें ऐसा नहीं रह जाता है, कि जिसे वह अखंड ब्रह्मचारी न कर सके। तात्पर्य–वह सब कुछ करनेको समर्थ होता है।

इस प्रकार इन दश धर्मोंका संक्षिप्त स्वरूप कहा सो तुमको निरन्तर इन धर्मोंको अपनी शक्ति अनुसार धारण करना चाहिये। अब इस दशलक्षण व्रतकी विधि कहते हैं—

भादों, माघ, और चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें पंचमीसे चतुर्दशी तक १० दिन पर्यन्त यह व्रत किया जाता है। दशों दिन त्रिकाल सामायिक, प्रतिक्रमण, वंदना, पूजन, अभिषेक, स्तवन, स्वाध्याय तथा धर्मचर्चा आदि करें और क्रमसे पंचमीको "ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः" इस मंत्रका १०८ बार, एक एक समय, इस प्रकार दिनमें ३२४ बार तीन काल सामायिकके समय जाप्य करे और इस उत्तम क्षमा गुणकी प्राप्तिके लिये भावना भावे तथा उसके स्वरूपका बारबार चिंतवन करे। इसी प्रकार छठमीको "ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः" का जाप कर भावना भावे। फिर सप्तमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम आर्जवधर्माङ्गाय नमः, अष्टमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम सत्यधर्माङ्गाय नमः, नवमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम शौच धर्माङ्गाय नमः, दशमीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम संयमधर्माङ्गाय नमः, एकादशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमतपधर्माङ्गाय नमः, द्वादशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः, त्रयोदशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तम आकिंचन्यधर्माङ्गाय नमः, चतुर्दशीको ॐ ह्रीं अर्हन्मुख० उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः इत्यादि मंत्रोंका जाप करके भावना भावे। समस्त दिन स्वाध्याय पूजादि धर्मकार्योंमें बितावे, रात्रिको जागरण भजन करे, सब प्रकारकी रागद्वेष व क्रोधादि कषाय तथा इन्द्रिय विषयोंको बढ़ानेवाली विकथाओंका तथा व्यापारादि समस्त प्रकारके आरंभोंका सर्वथा त्याग करे। दशों दिन यथाशक्ति प्रोषध (उपवास) बेला, तेला आदि करे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो एकाशना, ऊनोदर तथा रस त्याग करके करे, परंतु कामोत्तेजक, सचिक्कण, मिष्ट, गरिष्ट (भारी) और स्वादिष्ट भोजनोंका त्याग करे तथा अपना शरीर स्वच्छ खादीके सादे कपड़ोंसे ही ढके। बढ़िया वस्त्रालंकार न धारण करे और रेशम, ऊन तथा फेन्सी परदेशी व मिलोंके बने वस्त्र तो छुवे भी नहीं, क्योंकि ये अनन्त जीवोंके घातसे बनते हैं और कामादिक विकारोंको बढ़ानेवाले होते हैं। इस प्रकार यह व्रत दश वर्ष तक पालन करके पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे, अर्थात् छत्र चमरादि मंगलद्रव्य, जपमाला, कलश, शास्त्रादि धर्मोपकरण प्रत्येक दश दश श्री मन्दिरजीमें पधराना चाहिये तथा पूजा विधानादि महोत्सव करना चाहिये। दुखित भुखितोंको भोजनादि दान देना चाहिये। वाचनालय, विद्यालय, छात्रालय, औषधालय, अनाथालय, पुस्तकालय, तथा दीन प्राणीरक्षक संस्थाएँ आदि स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार द्रव्य खर्च

करनेमें असमर्थ हो तो शक्ति प्रमाण प्रभावनाको बढानेवाला उत्सव करे अथवा सर्वथा असमर्थ हो तो द्विगुणित वर्षों प्रमाण (२० वर्ष) व्रत करे। इस व्रतका फल स्वर्ग तथा मोक्षसुखकी प्राप्ति होना है।

यह उपदेश व व्रतकी विधि सुन उन चारों कन्याओंने मुनिराजकी साक्षीपूर्वक इस व्रतको स्वीकार किया और निज निज घरोंको गई। पश्चात् दश वर्ष तक उन्होंने यथाविधि व्रत पालकर उद्यापन किया सो उत्तमक्षमादि धर्मोंका अभ्यास हो जानेसे उन चारों कन्याओंका जीवन सुख और शांतिमय हो गया। ये चारों कन्यायें इस प्रकार सर्व स्त्रीसमाजमें मान्य हो गईं। पश्चात् वे अपनी आयु पूर्ण कर अंत समय समाधिमरण करके महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमें अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामके महर्द्धिक देव हुए। वहांपर अनेक प्रकार सुख भोगते और अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी भक्ति वन्दना करते हुए अपनी आयु पूर्ण कर वहांसे चये सो जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मालवा प्रांतके उज्जैन नगरमें मूलभद्र राजाके घर लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे पूर्णकुमार, देवकुमार, गुणचन्द्र और पद्मकुमार नामके रूपवान व गुणवान पुत्र हुए और भलेप्रकार बाल्यकाल व्यतीत करके कुमारकालमें सब प्रकारकी विद्याओंमें निपुण हुए। पश्चात् इन चारोंका ब्याह, नन्दननगरके राजा इण तथा उनकी पत्नी तिलकसुन्दरीके गर्भसे उत्पन्न कलावती, ब्राह्मी, इदुगात्री, और रूकू नामकी चार अत्यन्त रूपवान तथा गुणवान कन्याओंके साथ हुआ, और ये दम्पति प्रेमपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक दिन राजा मूलभद्रने आकाशमें बादलोंको बिखरे हुए देखकर संसारके विनाशीक स्वरूपका चिंतवन किया और द्वादशानुप्रेक्षा भाई। पश्चात् ज्येष्ठ पुत्रको राज्यभार सौंपकर आप परम दिगम्बर मुनि होगये। इन चारों पुत्रोंने यथायोग्य प्रजाका पालन व मनुष्योचित भोग भोगकर कोईएक कारण पाकर जिनेश्वरी दीक्षा ली, और महान तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त हो, अनेक देशोंमें विहार करके धर्मोपदेश दिया। फिर शेष अघातिया कर्मोंको भी नाशकर आयुके अंतमें योग निरोध करके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होगये। इस प्रकार उक्त चारों कन्याओंने विधिपूर्वक इस व्रतको धारण करके स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्ग तथा मनुष्य गतिके सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया। इसीप्रकार जो और भव्यजीव मन, वचन, कायसे इस व्रतको पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

मृगांकलेखादि कन्याएं, दशलक्षण व्रत धार। 'दीप' लहो निर्वाण पद, वन्दूं वारवार ॥ १ ॥

श्री षोडशकारण व्रत कथा।

षोडशकारण भावना, जो भाई जिन धार। कर तिन पदकी वंदना, कहूं कथा सुखकार ॥ १ ॥

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके मगध (बिहार) प्रांतमें राजगृही नगर है। वहांका राजा हेमप्रभु और रानी विजयावती थी। इस राजाके यहां महाशर्मा नामक नौकर था और उसकी स्त्रीका नाम प्रियवंदा था। इस प्रियवंदाके गर्भसे कालभैरवी नामकी एक अत्यन्त कुरूपा कन्या उत्पन्न हुई कि जिसे देखकर मातापितादि सभी स्वजनोंतकको घृणा होती थी।

एक दिन मतिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए इस नगरमें आये, सो उस महाशर्माने अत्यन्त भक्ति सहित श्री मुनिको पड़गाहकर विधिपूर्वक आहार दिया और उनसे धर्मोपदेश सुना। पश्चात् जुगल कर जोड़कर विनय युक्त हो पूछा हे नाथ! यह मेरी कालभैरवी नामकी कन्या किस पापकर्मके उदयसे ऐसी कुरूपा और कुलक्षणी उत्पन्न हुई है, सो कृपाकर कहिये? तब अवधिज्ञानके धारी श्री मुनिराज कहने लगे, वत्स! सुनो —

उज्जैन नगरीमें एक महीपाल नामका राजा और उसकी वेगावती नामकी रानी थी। इस रानीसे विशालाक्षी नामकी एक अत्यन्त सुन्दर रूपवान कन्या थी, जो कि बहुत रूपवान होनेके कारण बहुत अभिमानिनी थी और इसी रूपके मदमें उसने एक भी सद्गुण न सीखा। यथार्थ है-अहंकारी (मानी) नरोंको विद्या नहीं आती है।

एक दिन वह कन्या अपनी चित्रसारीमें बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थी कि, इतनेमें ज्ञानसूर्य नामके महा-तपस्वी श्री मुनिराज उसके घरसे आहार लेकर बाहर निकले, सो इस अज्ञान-कन्याने रूपके मदसे मुनिको देखकर खिड़कीसे मुनिके ऊपर थूक दिया, और बहुत हर्षित हुई।

परन्तु पृथ्वीके समान क्षमावान श्री मुनिराज तो अपनी नीची दृष्टि किये हुए ही चले गये। यह देखकर राजपुरोहित इस कन्याका उन्मत्तपना देख उसपर बहुत क्रोधित हुआ, और तुरन्त ही प्रासुक जलसे श्री मुनिराजका शरीर प्रक्षालन करके बहुत भक्तिसे वैय्यावृत्य कर स्तुति की। यह देखकर वह कन्या बहुत लज्जित हुई, और अपने किये हुए नीच कृत्य पर

पश्चाताप करके श्री मुनिके पास गई और नमस्कार करके अपने अपराधकी क्षमा मागी। श्री मुनिराजने उसको धर्मलाभ कह कर उपदेश दिया, पश्चात् वह कन्या वहासे मरकर तेरे घर यह कालभैरवी नामकी कन्या हुई है। इसने जो पूर्वजन्ममे मुनिकी निंदा व उपसर्ग करके जो घोर पाप किया है उसीके फलसे यह ऐसी कुरूपा हुई है। क्योंकि पूर्व सचित कर्मोंका फल भोगे विना छुटकारा नहीं होता है। इसलिये अव इसे समभावोसे भोगना ही कर्तव्य है और आगेको ऐसे कर्म न रधे ऐसा समी चीन उपाय करना योग्य है। अव पुनः वह महाशर्मा बोला—हे प्रभो! आप ही कृपाकर कोई ऐसा उपाय वताइये कि जिससे यह कन्या अव इस दु खसे छूटकर सम्यक सुखोको प्राप्त होवे। तव श्री मुनिराज बोले, वत्स! सुनो —

ससारमे मनुष्योके लिये कोई भी कार्य असाध्य नही है सो भला यह कितनासा दु:ख है? जिनधर्मके सेवनसे तो अनादिकालसे लगे हुए जन्म मरणादि दुःख भी छूटकर सच्चे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है और दु:खोके छूटनेकी तो वात ही क्या है? ये तो सहज हीमे छूट जाते है। इसलिये यदि यह कन्या षोडशकारण भावना भावे, और व्रत पाले, तो अल्पकालमे ही स्त्रीलिंग छेदकर मोक्ष सुखको पावेगी। तव वह महाशर्मा बोला—हे स्वामी! इस व्रतकी कौन कौन भावनायें है और विधि क्या है? सो कृपाकर कहिये। तव मुनिराजने इन जिज्ञासुओको निम्न प्रकार षोडशकारण व्रतका स्वरूप और विधि वताई। वे कहने लगे कि:—

(१) ससारमे जीवका शत्रु मिथ्यात्व और मित्र सम्यक्त्व है। इसलिये मनुष्यका कर्तव्य है कि सबसे प्रथम मिथ्यात्व (अतत्त्व श्रद्धान या विपरीत श्रद्धान) को वमन (त्याग) करके सम्यक्त्वरूपी अमृतका पान करे। सत्यार्थ (जिन) देव, सच्चे (निर्ग्रन्थ) गुरु और सच्चे (जिन भाषित) धर्मपर श्रद्धा (विश्वास) लावें। पश्चात् सप्त तत्त्वों तथा पुण्य पापका स्वरूप जानकर इनकी श्रद्धा करके अपने आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न अनुभव करें और इनके सिवाय अन्य मिथ्या देव गुरु व धर्मको दूर हीसे इस प्रकार छोड दें जैसे तोता अवसर पाकर पिंजरेसे निकल भागता है। ऐसे सम्यक्त्वी पुरुषोंके प्रशम (मंद कषाय स्वरूप समभाव अर्थात सुख व दु:खमे समुद्र सरीखा गम्भीर रहना, घबराना नहीं), सवेग (धर्मानुराग-सासारिक विषयोसे विरक्त हो, धर्म और धर्मायतनोंमे प्रेम बढ़ाना), अनुकम्पा (करुणा—दुःखी जीवोपर दयाभाव करके उनकी यथाशक्ति

सहायता करना) और आस्तिक्य (श्रद्धा–कैसा भी अवसर क्यों न आवे, तो भी अपने निर्णय किये हुए सन्मार्गमें दृढ़ रहना) ये चार गुण प्रगट होजाते हैं। उन्हें किसी प्रकारका भय व चिंता व्याकुल नहीं कर सकती है। व धीर वीर सदा प्रसन्नचित्त ही रहते हैं, कभी किसी चीजकी उन्हें प्रबल इच्छा नहीं होती, चाहे वे चारित्रमोह कर्मके उदयसे व्रत न भी ग्रहण कर सकें तो भी व्रत और व्रती संयमी जनोंमें उनकी श्रद्धा भक्ति व सहानुभूति विशेष रहती है जोकि मोक्षमार्गकी प्रथम सोपान (सीढी) है। इसलिये इसे ही २५ मल–दोषोंसे रहित और अष्ट अंग सहित धारण करो। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सब निष्फल (मिथ्या) है। यही दर्शनविशुद्धि नामकी प्रथम भावना है।

(२) जीव (मनुष्य) जो सन्मार्ग सबकी दृष्टिसे उतरजाता है, उसका प्रधान कारण केवल अहंकार (मान) है। सो कदाचित् वह मानी अपनी समझमें भले ही अपने आपको बड़ा माने परन्तु क्या कौआ मन्दिरके शिखरपर बैठ जानेसे गरुड़पक्षी होसकता है? कभी नहीं। किन्तु सर्व ही प्राणी उससे घृणा ही करते हैं। और कदाचित उसके पूर्व पुण्योदयसे उसे कोई कुछ न भी कह सकें, तौभी वह किसीके मनको बदल नहीं सकता है। सत्य है–जो ऊपरको देखकर चलता है, वह अवश्य ही नीचे गिरता है। ऐसे मानी पुरुषको कभी कोई विद्या सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि विद्या विनयसे आती है। मानी पुरुष निरन्तर सदा खेदित रहता है; क्योंकि वह सदा सबसे सन्मान चाहता है, और ऐसा होना असम्भव है, इसलिये निरन्तर सबको अपनेसे बड़ोंमें सदा विनय, समान (बराबरीवाले) पुरुषोंमें प्रेम और छोटोंमें करुणाभावसे प्रवर्तना चाहिये। सदैव अपने दोषोंको स्वीकार करनेके लिये सावधानतापूर्वक तत्पर रहना चाहिये। और दोष बतानेवाले सज्जनका उपकार मानना चाहिये, क्योंकि जो मानी पुरुष अपने दोषोंको स्वीकार नहीं करता, उसके दोष निरन्तर बढ़ते ही जाते हैं और इसीलिये वह कभी उनसे मुक्त नहीं होसकता। इसलिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार इन पांच प्रकारकी विनयोंका वास्तविक स्वरूप विचार कर विनयपूर्वक प्रवर्तन करना, सो विनय–सम्पन्नता नामकी दूसरी भावना है।

(३) बिना मर्यादा अर्थात् प्रतिज्ञाके मन वश नहीं होता, जैसा कि बिना लगाम (बाग रास) के घोड़ा या बिना अंकुशके हाथी; इसलिये आवश्यक है कि मन व इन्द्रियोंको वश करनेके लिये कुछ प्रतिज्ञारूपी अंकुश कायम रखना चाहिये।

यथा अहिंसा (किसी भी जीवका अथवा अपने भी द्रव्य तथा भावप्राणोका घात न करना अर्थात् उन्हें न सताना न मारना), सत्य (यथार्थ वचन बोलना, जो किसीको भी पीडाजनक न हो), अचौर्य (विना दिये हुए परवस्तुका ग्रहण न करना), ब्रह्मचर्य्य (स्त्रीमात्रका अथवा स्वदार विना अन्य स्त्रियोके साथ विषय-मैथुन सेवनका त्याग) और स्वपर आत्माओंको विषय कषाय उत्पन्न करानेवाले बाह्य अभ्यतर परिग्रहोका त्याग या प्रमाण (सम्पूर्ण परिग्रहोका त्याग या अपनी योग्यता या शक्ति अनुसार आवश्यक वस्तुओका प्रमाण करके अन्य समस्त पदार्थोंसे ममत्वभाव त्याग करना, इसे लोभको रोकना भी कहते है), इसप्रकार ये पाच व्रत और इनकी रक्षार्थ सप्तशीलो (३ गुणव्रतों और ४ शिक्षाव्रतो) का भी पालन करे तथा उक्त शील और व्रतोके अतीचारो (दोषो) को भी बचावे । इन व्रतोके निर्दोष पालन करनेसे न तो राजदड कभी होता है और न पचदड ही होता है और ऐसा व्रती पुरुष अपने सदाचारसे सबका आदर्श बन जाता हे । इसके विरुद्ध कदाचारी जनोंको इस भवमे और परभवमे भी अनेक प्रकार दण्ड व दुख सहने पडते है, ऐसा विचार करके इन व्रतोमें निरन्तर दृढ होना चाहिये । यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

(४) मिथ्यात्वके उदयसे हिताहितका स्वरूप विना जाने यह ससारी जीव सदैव अपने लिये सुख प्राप्तिकी इच्छासे विपरीत ही मार्ग ग्रहण कर लेता है, जिससे सुख मिलना तो दूर रहा, किंतु उल्टा दुःखका सामना करना पडता है । इसलिये निरन्तर ज्ञान सम्पादन करना परमावश्यक है, क्योंकि जहा चर्मचक्षु काम नहीं देसकते है वहा ज्ञानचक्षु ही काम देते है । ज्ञानीपुरुष नेत्रहीन होनेपर भी अज्ञानी आखवालेसे अच्छा है। अज्ञानी न तो लौकिक कार्यों हीमें सफल मनोरथ होते हैं, और न पारलौकिक ही कुछ साधन कर सकते है। वे ठौर ठौर ठगाये जाते हैं, और अपमानित होते हैं, इसलिये ज्ञान उपार्जन करना आवश्यक है, ऐसा विचार करके निरन्तर विद्याभ्यास करना व कराना, सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नामकी भावना है।

(५) इन ससारी जीवोमेसे प्रत्येक जीवके विषयानुरागता इतनी बढी हुई है कि कदाचित् इसको तीन लोककी समस्त सम्पत्ति भोगनेको मिल जाय तो भी उसकी इच्छाके असख्यातवें भागकी पूर्ति न हो, सो जीव ससारमे अनन्तानन्त है, और लोकके पदार्थ जितने है उतने ही हैं, सो जब सभी जीवोकी अभिलाषा ऐसी ही बढी हुई है, तब यह लोककी

सामग्री किस किसको कितने कितने अंशोंमें पूर्ति कर सक्ती है? अर्थात् किसीको नहीं। ऐसा विचारकर उत्तम पुरुष अपनी इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर मनको धर्मध्यानमें लगा देते हैं। इसीको संवेग भावना कहते हैं।

(६) जबतक मनुष्य किसी भी पदार्थमें ममत्व, अर्थात् यह वस्तु मेरी है ऐसा भाव रखता है, तबतक वह कभी सुखी नहीं होसक्ता है, क्योंकि पदार्थोंका स्वभाव नाशवान है, जो उत्पन्न हुए या नियमसे नाश होंगे, और जो मिले हैं सो बिछुडेंगे, इसलिये जो कोई इन पदार्थोंको (जो इसे पूर्व पुण्योदयसे प्राप्त हुए हैं) अपने आप ही उनको छोड़ जानेसे पहिले ही छोड़ देवे, ताकि वे (पदार्थ) उसे न छोड़ने पावें, तो निस्सन्देह दुःख आनेका अवसर ही न आवेगा, ऐसा विचार करके जो आहार, औषध, शास्त्र (विद्या) और अभय इन चार प्रकारसे दानोंको, मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविकाओं (चार संघों) में भक्तिसे तथा दीन दुःखी नर पशुओंको करुणा भावोंसे देता है तथा अन्य यथावश्यक कार्यों (धर्म प्रभावना व परोपकार) में द्रव्य खर्च करता है उसे ही दान या शक्तितस्त्याग नामकी भावना कहते है।

(७) यह जीव स्व स्वरूपमें भूला हुआ इस घृणित देहमें ममत्व करके इसके पोषणार्थ नानाप्रकारके पाप करता है, तो भी यह शरीर स्थिर नहीं रहता, दिनोंदिन सेवा और सम्हाल करते करते क्षीण होता जाता है और एक दिन आयुकी स्थिति पूर्ण होते ही छोड़ देता है, सो ऐसे नाशवंत और घृणित शरीरमें ममत्व (राग) न करके वास्तविक सच्चे सुखकी प्राप्तिके अर्थ इसको लगाना (उत्सर्ग करना) चाहिए ताकि इसका जो जीवके साथ अनन्तानन्त वार संयोग तथा वियोग हुआ करता है, सो फिर ऐसा वियोग हो कि फिर कभी भी संयोग न होसके अर्थात् मोक्षपदकी प्राप्ति होजावे। इसमें यही सार है ; क्योंकि स्वर्ग नर्क या पशु पर्यायमें तो सम्यक् और उत्तम तपश्चरण पूर्ण हो ही नहीं सक्ता है, इसलिये यही मनुष्य जन्म श्रेष्ठ अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा समझकर अपनी शक्ति व द्रव्य, क्षेत्र, काल भावोंको विचार करके अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छः बाह्य और प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छः अभ्यंतर, इस प्रकार बारह तपोंमें प्रवृत्ति करना सो सातवीं शक्तितस्तप नामकी भावना कहाती है।

(८) जीव मात्रके कल्याण करनेवाले सम्यक् धर्मकी प्रवृत्ति धर्मात्माओंसे होती है और धर्मात्माओंसे सर्वोत्तम

सम्यक् रत्नत्रयके धारी परम दिगम्बर साधु हैं, इसलिये साधु वर्गोंपर आए हुए उपसर्गोंको यथासम्भव दूर करना, सो साधु-समाधि नामकी भावना है।

(९) साधुसमूह तथा अन्य साधर्मीजनोंके शरीरमे किसी प्रकारकी रोगादिक व्याधि आ जानेसे उनके परिणामोंमे शिथिलता व प्रमाद आ जाना सम्भव है, इसलिये साधर्मी (साधु व गृहस्थ) जनोंकी भक्ति भावसे उनको दर्शन तथा चारित्रमे स्थिर रखने तथा दीन दु खी जीवोंको धर्म मार्गमे लगाकर उनके दु'ख दूर करनेके लिये उनकी सेवा, तथा उपचार करनेको वैय्यावृत्यकरण भावना कहते है।

(१०) अर्हत भगवानके द्वारा ही मोक्षमार्गका उपदेश मिलता है, क्योंकि वे प्रभु केवल कहते ही नहीं हैं किंतु स्वय मोक्षके सन्निकट पहुँच गये ह, इसलिये उनके गुणोंमे अनुराग करना, उनकी भक्ति पूर्वक पूजन तथा स्तवन तथा ध्यान करना, सो अर्हद्भक्ति भावना है।

(११) विना गुरुके सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सच्चे निस्पृह और हितैषी उपदेशक समस्त सघके नायक दीक्षा शिक्षादि देकर निर्दोष धर्ममार्ग पर चलानेवाले आचार्य महाराजके गुणोंकी सराहना करना व उनमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति नाम भावना है।

(१२) अल्पश्रुत अर्थात् अपूर्ण आगमके जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा सच्चे उपदेशककी प्राप्ति होना दुर्लभ क्या असम्भव ही है। इसीलिये समस्त द्वादशांगके पारगामी श्री उपाध्याय महाराजकी भक्ति, तथा उनके गुणोंमे अनुराग करना सो बहुश्रुतभक्ति नाम भावना है।

(१३) सदा अर्हन्त भगवानके मुखकमलसे प्रगटित मिथ्यात्वका नाश करने, तथा सब जीवोंको हितकारी, वस्तु स्वरूपको बतानेवाला श्री जैनशास्त्रोंका पठनपाठनादि अभ्यास करना, सो प्रवचनभक्ति नाम भावना है।

(१४) मन वचन कायकी शुभाशुभ क्रियाओंको योग कहते है। इन ही योगोंके द्वारा शुभाशुभ कर्मोंका आश्रव होता है। इसलिये यदि ये आश्रवके द्वार (योग) रोक दिये जाय, तो सवर, कर्माश्रव बद हो सकता है और सवर

करनेका उत्तमोत्तम उपाय सामायिक प्रतिक्रमण आदि षडावश्यक हैं। इसलिये इन्हें नित्य प्रतिपालन करना चाहिये। पद्मासन या अर्द्धासनसे बैठकर सीधे नीचेको हाथ छोड़कर, खड़े होकर मन वचन कायके समस्त व्यापारोंको रोककर, चित्तको एकाग्र करके एक ध्येय (आत्मा) में स्थिर करना सो समतारूप सामायिक है। अपने किये हुए दोषोंको स्मरण करके उनपर पश्चात्ताप करना और उनको मिथ्या करनेके लिये प्रयत्न करना सो प्रतिक्रमण है। आगेके लिये दोष न होने देनेके लिये यथाशक्ति नियम करना (दोषोंका त्याग करना) सो प्रत्याख्यान है। तीर्थंकरादि अर्हन्त आदि पंच परमेष्ठियों तथा चौबीस तीर्थंकरोंके गुण कीर्तन करना सो स्तवन है। मन, वचन, काय शुद्ध करके चारों दिशाओंमें चार शिरोनति और प्रत्येक दिशामें तीन आवर्त ऐसे बारह आवर्त करके पूर्व या उत्तर दिशामें अष्टांग नमस्कार करना तथा एक तीर्थंकरकी स्तुति करना सो वन्दना है। और किसी समय विशेषका प्रमाण करके उतने समय तक एकाग्रमनसे स्थिर रहना तथा उतने समयके भीतर शरीरसे मोह छोड़ देना, ऊपर आए हुए समस्त उपसर्ग व परीषहोंको समभावोंसे सहन करना सो कायोत्सर्ग है। इस प्रकार विचार कर इन छहों आवश्यकोंमें जो सावधान होकर प्रवर्तन करता है सो परम संवरका कारण आवश्यकापरिहाणि नामकी भावना है।

(१५) काल दोषसे अथवा उपदेशके अभावसे संसारी जीवोंके द्वारा सत्य धर्मपर अनेकों आक्षेप होनेके कारण उसका लोप सा होजाता है। धर्मके लोप होनेसे जीव भी धर्मरहित होकर संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होते हैं। इसलिये ऐसे २ समयोंमें येन केन प्रकारेण समस्त जीवोंपर सत्य (जिन) धर्मका प्रभाव प्रगट कर देना, सो मार्ग प्रभावना है। और यह प्रभावना जिन धर्मके उपदेशोंके प्रचार करने, शास्त्रोंके प्रकाशन व प्रसारणसे, शास्त्रोंके अध्ययन वा अध्यापन करने करानेसे, विद्वानोंकी सभायें कराने, अपने आप सदाचरण पालने, लोकोपकारी कार्य करने, दान देने, रथ निकालने व जिनमन्दिरोंकी स्थापना व प्रतिष्ठादि करने, सत्य व्यवहार करने, संयम नियम व तपादिक करनेसे होती है, ऐसा समझकर यथाशक्ति प्रभावनोत्पादक कार्योंमें प्रवर्तना सो मार्गप्रभावना नामकी भावना है।

(१६) संसारमें रहते हुए जीवोंको परस्परकी सहायता व उपकारकी आवश्यकता रहती है, ऐसी अवस्थामें यदि

निष्कपट भावसे अथवा प्रेमपूर्वक सहायता न की जाय, तो परस्पर यथार्थ लाभ पहुचना दुर्लभ ही है, इतना ही नहीं किन्तु परस्परके विरोधसे अनेकानेक हानियां व दु ख होना सम्भव है। जैसे हो भी रहे हैं। इसलिये यह परमावश्यक कर्तव्य है कि प्राणी परस्पर (गायका अपने बछडेपर जैसा निष्कपट और प्रगाढ प्रेम होता है वैसा ही) निष्कपट प्रेम करें। विशेषकर साधर्मियोंके संग तो कृत्रिम प्रेम कभी न करें, ऐसा विचार कर जो साधर्मियों तथा प्राणी मात्रसे अपना निष्कपट व्यवहार करते है उसे प्रवचन वात्सल्य नामकी भावना कहते हैं।

इन भावनाओंको यदि केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलके निकट अन्त करणसे चिन्तवन की जाय तथा तदनुसार प्रवर्तन किया जाय तो इनका फल तीर्थंकर नामकर्मके आश्रवका कारण है। आचार्य महाराज इस प्रकार भावनाओंका स्वरूप कहकर अब व्रतकी विधि कहते है —

भादो, माघ और चैत्र (गुजराती श्रावण, पौष और फाल्गुन) वदी १ से कुवार फागुन और वैशाख वदी १ (गुजराती भादो, माघ, चैत्र वदी १) तक (एक वर्षमे तीन बार) पूरे एक एक मासतक यह व्रत करना चाहिये। इन दिनोंमे तेला, बेला आदि उपवास करे अथवा नीरस वा एक आदि दो तीन रस त्यागकर ऊनोदर पूर्वक अतिथि या दीन दु खी नर या पशुओंको भोजनादि दान देकर एक भुक्त करे, अंजन, मंजन, वस्त्रालंकार विशेष धारण न करे, शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) रक्खे, नित्य षोडशकारण भावना भावे और यंत्र बनाकर पूजाभिषेक करे, त्रिकाल सामायिक करे और (ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्षणज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैय्यावृत्यकरण, अर्हतभक्ति, आचार्यभक्ति, उपाध्यायभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्यादि षोडश कारणेभ्यो नम) इस महामंत्रका दिनमें तीन बार १०८ एकसो आठ बार जाप करे। इस प्रकार इस व्रतको उत्कृष्ट सोलह वर्ष, मध्यम ५ अथवा दो वर्ष और जघन्य १ वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करे। अर्थात् सोलह २ उपकर्ण श्री मन्दिरजीमे भेट दे और शास्त्र व विद्यादान करे, शास्त्र भण्डार खोले, सरस्वती मन्दिर बनावे, पवित्र जिनधर्मका उपदेश करे और करावे इत्यादि। यदि द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो द्विगुणित व्रत करे।

इस प्रकार ऋषिराजके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर कालभैरवी नामकी उस ब्राह्मण कन्याने षोडशकारण व्रत स्वीकार करके उत्कृष्ट रीतिसे पालन किया, भावना भाई और विधिपूर्वक उद्यापन किया। पीछे वह आयुके अन्तमें समाधिमरण द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें (अच्युत) स्वर्गमें देव हुई। वहांसे बाईस सागर आयु पूर्ण कर वह देव, जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्र सम्बन्धी अमरावती देशके गन्धर्व नगरमें राजा श्रीमन्दिरकी रानी महादेवीके सीमंधर नामका तीर्थंकर पुत्र हुआ सो योग्य अवस्थाको प्राप्त होकर राज्योचित सुख भोग जिनेश्वरी दीक्षा ली, और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करके बहुत जीवोंको धर्मोपदेश दिया। तथा आयुके अन्तमें समस्त अघाति कर्मोंका भी नाशकर निर्वाणपद प्राप्त किया। इसप्रकार इस व्रतको धारण करनेसे कालभैरवी नामकी ब्राह्मण कन्याने सुर नरभवोंके सुखोंको भोगकर अक्षय अविनाशी स्वाधीन मोक्षसुखोंको प्राप्त कर लिया, तो जो अन्य भव्यजीव इस व्रतको पालन करेंगे उनको भी अवश्य ही उत्तम फलकी प्राप्ति होवेगी।

षोडश कारण व्रत धरो, कालभैरवी सार। सुरनरके सुख "दीप" लह, लहो मोक्ष अधिकार ॥ १ ॥

श्री श्रुतस्कन्ध व्रत कथा।

श्रुतस्कन्ध वन्दूं सदा, मन वच शीश नवाय। जा प्रसाद विद्या लहूं, कहूं कथा सुखदाय ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक अंग नामका देश है, उसके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें राजा चन्द्ररुचिकी पट्टरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालिनी नामकी एक अत्यन्त रूपवान कन्या थी, सो राजाने इस कन्याको जिनमती नामकी आर्या (गुरानी) के पास पढनेको बैठाई जिससे वह थोडे ही दिनोंमें विद्यामें निपुण होगई। एक दिन इस कन्याने अपनी ही बुद्धिसे चौकीपर श्रुतस्कन्ध मण्डल बनाया। इसे देखकर गुरानीको आश्चर्य हुआ और कन्याकी बहुत प्रशंसा की तथा समझा कि अब यह विद्यामें निपुण हो चुकी है, इसलिये उसे सहर्ष राजाके पास-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। राजा कन्याको विदुषी देखकर बहुत हर्षित हुआ और गुरानीकी भूरि भूरि स्तुति की तथा उचित पुरस्कार भी (भेंट) दिया।

एक दिन इसी नगरके उद्यानमें श्री वर्द्धमान मुनि आये। यह समाचार सुनकर राजा, अपने परिवार तथा पुरजनो सहित उत्साहसे वन्दनाको गया। और भक्तिपूर्वक वन्दना करके मुनि-चरणोंके निकट बैठा। मुनिराजने धर्मवृद्धि कहकर धर्मका स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर लोगोने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा-हे ऋषिराज! यह कन्या किस पुण्यसे ऐसी रूपवान और विदुषी हुई है? तब मुनिश्री बोले:—

इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकनी नगरी है। वहाका राजा गुणभद्र और रानी गुणवती थी। सो एक समय यह राजा रानी सपरिवार श्री सीमंधरस्वामीकी वंदनाको गये और यथायोग्य भक्ति वंदना करके नरकोठेमें बैठे। पश्चात् सप्त तत्त्व और पुण्य पापका स्वरूप सुनकर श्री गुरुसे पूछा-हे प्रभु! कृपाकर श्रुतस्कन्ध व्रतका क्या स्वरूप है, सो समझाइये। तब गणधर महाराजने कहा-श्री जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनि सातिशय निरक्षरी (वाणी) मेघकी [illegible]नाके समान ॐकार रूप भव्यजीवोंके हितार्थ उनके पुण्यके अतिशयके कारण और भगवानकी वचनवर्गणाके उदयसे [illegible]रती है। इसे सर्व समाजन अपनी२ भाषाओंमें समझ लेते है। इसी वाणीको चार ज्ञानधारी गणनायक मुनिने अल्पज्ञानी जीवोंके सम्बोधनार्थ (आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, सूत्रविपाकांग और दृष्टिप्रवादांग) इस प्रकार द्वादशांग रूपसे कथन की। [illegible] इन्हींके आधारसे और मुनियोने भी भेदाभेद पूर्वक देश-भाषाओमें कथन की है। यह जिनेन्द्रवाणी समस्त लोकालोकके [illegible] और त्रिकालवर्ती पदार्थोंको प्रदर्शित करनेवाली समस्त प्राणियोंके हितरूप मिथ्या मतोंकी उत्थापक, पूर्वापरके विरोधोंसे [illegible] जो भव्यजीव इस वाणीको सुनकर हृदयरूप करता अथवा उसकी भावना भाकर व्रत संयम धारण [illegible] शास्त्रोंका पारगामी होजाता है। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादो मासमें नित्य श्री जिन [illegible] श्रुतस्कन्ध पूजन विधान करे और एक मासमें उत्कृष्ट १६, मध्यम १० और जघन्य [illegible] नीरस व एक दो आदि रस छोड़कर एकभुक्त करे। इस प्रकार यह व्रत बारह [illegible] करे। बारह बारह उपकरण घण्टा, झालर, पूजाके बासन, छत्र, चमर,

चन्दोवा, चौकी, वेष्टनादि मंदिरमें भेट करे, शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधरावे तथा श्रावकोंको भेट देवे और शास्त्र-भण्डा-
रोंकी सम्हाल करे, नवीन सरस्वती भवन बनावे, सर्वसाधारण जनोंको श्री जिनवाणीका उपदेश करे और करावे। इसप्रकार
यह व्रत धारण करनेसे अनुक्रमसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होकर सिद्धपद प्राप्त होता है।

जाप्य नित्य दिनमें तीन बार जपे—" ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानेभ्यो नमः " और
भावना भावे। इस प्रकार राजा गुणभद्र और गुणवती रानीने व्रतकी विधि सुनकर भाव सहित धारण किया और भावना
भाई। सो अतसमय समाधिमरणकर अच्युतस्वर्गमें इन्द्र इन्द्राणी हुए। वहांसे वह रानीका जीव (इन्द्राणी) चयकर यह
तेरे श्रुतशालिनी नामकी कन्या हुई है। इसप्रकार गुरुमुखसे भवान्तर सुनकर उस कन्याने पुनः श्रुतस्कन्ध व्रत धारण किया
और चारित्रके प्रभावसे विषय-कषायोंको अतिशय मंद किया, पश्चात् अन्त समयमें समाधिसे मरण कर, स्त्रीलिंगको छेदकर
अहमिन्द्रपद प्राप्त किया और वहांके अनुपम सुख भोगकर अपर विदेह कुमदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभराजाकी पट्टरानी
जितपद्माके गर्भसे नयधर नाम तीर्थंकर हुआ। साथ ही चक्रवर्ति और कामदेवपदको भी सुशोभित किया। बहुत समय तक
नीतिपूर्वक प्रजाका पालन किया। पश्चात् एक दिन इन्द्रधनुषको आकाशमें विलीन होते देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। सो
अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म, इन वैराग्यको
दृढ़ करनेवाली बारह भावनाओंका चितवनकर दीक्षा ग्रहण की, और कितनेक कालतक उत्कृष्ट संयम पालकर शुक्लध्यानके
योगसे केवलज्ञान प्राप्त किया, तब देवोंने समवशरणकी रचना की। इसप्रकार अनेक देशोंमें विहार करके भव्य जीवोंको
वस्तुस्वरूपका उपदेश किया और आयुके अन्त समयमें अघाति कर्मोंको नाश करके अविनाशी सिद्धपद प्राप्त किया। इस-
प्रकार और भी जो नरनारी भाव सहित इस व्रतको पालन करेंगे तो अवश्य ही उत्तम पदको प्राप्त होंगे।

श्रुतशालिनी कन्या कियो, श्रुतस्कन्ध व्रत सार। " दीप " कर्म सब नाशके, हो मोक्ष सुखकार ॥

श्री त्रिलोक तीज कथा।

वन्दों श्री जिनदेव पद, वन्दूं गुरु चरणार। वन्दूं माता सरस्वती, कथा कहूं हितकार॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगलदेशमें हस्तनागपुर नामका एक अति रमणीक नगर है। वहाका राजा कामदुक और रानी कमललोचना थीं और उनके विशालदत्त नामका पुत्र था। उस राजाके चन्द्रदत्त नामका एक मंत्री था, जिसकी विशालाक्षी पत्नीसे विनयसुन्दरी नामकी एक कन्या बहुत सुन्दर थी, जिसका पाणिग्रहण राजपुत्र विशालदत्तने किया था। कितनेक दिन बाद राजा कामदुककी मृत्यु होनेपर युवराज विशालदत्त राजा हुआ।

एक दिन राजा अपने पिताके वियोगसे व्याकुल हुआ उदास बैठा था कि उसीसमय उस ओर विहार करते हुए श्री ज्ञानसागर नामके मुनिवर आये। राजाने उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उच्चासन दिया, तब मुनिने धर्मवृद्धिकर आशीष दी और इस प्रकार सम्बोधन करने लगे—

राजा! सुनो यह काल (मृत्यु), सुर (देव), नर, पशु आदि किसीको भी नहीं छोड़ता है। संसारमें जो उत्पन्न होता है सो नियमसे नाश होता है। ऐसी विनाशीक वस्तुके संयोग वियोगमें हर्ष विषाद ही क्या? यह तो पक्षियोंके समान रैन (रात्रि) बसेरा है। जहाजमें देश देशांतरके अनेक लोग आ मिलते हैं परन्तु अवधि पूरी होने पर सब अपने २ देशको चले जाते हैं। इसी प्रकार ये जीव एक कुल (वंश–परिवार) में अनेक गतियोंसे आ आकर एकत्र होते हैं और अपनी २ आयु पूर्णकर संचित कर्मानुसार यथायोग्य गतियोंको चले जाते हैं। किसीकी यह सामर्थ्य नहीं है कि एक क्षण मात्र भी आयुको बढ़ा सके। यदि ऐसा होता, तो बड़े बड़े तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पुरुषोंको क्यों कोई मरने देता? मृत्युसे यद्यपि वियोगजनित दुःख अवश्य ही मोहके वश मालूम होता है तथापि उपकार भी बहुत होता है। यदि मृत्यु न होती, तो रोगी रोगसे मुक्त न होता, संसारी कभी सिद्ध न हो सकता, जो जिस दशामें होता उसीमें रहा आता, इसलिए यह मृत्यु उपकारी भी है, ऐसा समझकर शोक तजो। इस शोकसे (आर्त्तध्यानसे) अशुभ कर्मोंका बन्ध होता है जिससे अनेकों जन्मांतरों तक रोना पड़ता है। रोना बहुत दुखदाई है।

मुनिके उपदेशसे राजाको कुछ धैर्य बन्धा। वे शोक तजकर प्रजापालनमें तत्पर हुए, और मुनिराज भी विहार कर गये।

एक दिन रानीने संयमभूषण अर्जिकाके दर्शन करके पूछा–माताजी, मेरे योग्य कोई व्रत बताइये जिससे मेरी चिंता दूर होवे और जन्म सुधरे। तब आर्यिकाजीने कहा,–तुम त्रैलोक्य तीज व्रत करो। भादो सुदी ३ को उपवास करके चौबीसी तीर्थंकरोंके ७२ कोठेका मंडल माडकर तीन चौबीसी पूजा विधान करो और तीनों काल १०८ आठ जाप (ॐ ह्रीं भूतवर्तमानभविष्यत्कालसम्बन्धिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः) जपे, रात्रिको जागरण करके भजन व धर्मध्यानमें काल बितावे। इसे दूसरे लोग रोट तीज भी कहते हैं। इसप्रकार तीन वर्ष तक यह व्रतकर पीछे उद्यापन करे, अथवा द्विगुणित व्रत करे।

उद्यापन करनेके समय तीन चौबीसीका मण्डल माडकर बड़ा विधान पूजन करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण तीन२ श्री मन्दिरजीमें भेंट करे। चतुर्विध संघको चार प्रकारका दान देवे। शास्त्र लिखाकर बांटे। इसप्रकार रानीने व्रतकी विधि सुनकर विधिपूर्वक इसे धारण किया। पश्चात् आयुके अन्तमें समाधिमरण करके सोलहवें स्वर्गमें स्त्री लिंग छेदकर देव हुई। वहां नाना प्रकारके देवोचित सुख भोगे, तथा अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी वन्दना आदि करते हुए यथासाध्य धर्मध्यानमें समय बिताया।

पश्चात् वहांसे चयकर मगधदेशके कञ्चनपुर नगरमें राजा पिंगल और रानी कमललोचनाके सुमङ्गल नामका अति रूपवान तथा गुणवान पुत्र हुआ। सो वह राजपुत्र एक दिन अपने मित्रों सहित वनक्रीडाको गया था, कि वहांपर परम दिगम्बर मुनिको देखकर इसे मोह उत्पन्न होगया, सो मुनिकी वन्दना करके पास निकट बैठा और पूछने लगा–हे प्रभु! आपको देखकर मुझे मोह क्यों उत्पन्न हुआ?

तब श्रीगुरु कहने लगे–वत्स! सुन। यह जीव अनादि कालसे मोहादि कर्मोंसे लिप्त हो रहा है, और क्या जाने इसके किस समय किस किस समयके बांधे हुए कौन कौन कर्म उदयमें आते हैं, जिनके कारण यह प्राणी कभी हर्ष व कभी विषादको प्राप्त होता है। इस समयको जो तुझे यह मोह हुआ है इसका कारण यह है कि इसके तीसरे भवमें तू हस्तनापुरके राजा विशाखदत्तकी भार्या विजयसुन्दरी नामकी रानी थी, सो तुझे संयमभूषण आर्यिकाने सम्बोधन करके त्रैलोक्य तीजका व्रत दिया था, जिसके प्रभावसे तू स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुआ, और वहांसे चयकर यहां राजा पिंगलके सुमंगल

नामका पुत्र हुआ है और वह मधमभूपण आर्यिकाका जीव वहासे समाधिमरण करके स्वर्गमे देव हुआ । यहासे चयकर यहा मै मनुष्य हुआ हू, सो कोई कारण पा दीक्षा लेकर विहार करता हुआ यहा आया हू । इसलिये तुझे पूर्व स्नेहके कारण यह मोह हुआ है ।

हे वत्स ! यह मोह महादुखका देनेवाला त्यागने योग्य है । यह सुनकर सुमङ्गलको वैराग्य उत्पन्न हुआ, और उसने इस संसारको विडम्बनारूप जानकर तत्काल जिनेश्वरी दीक्षा धारण की । कितनेक काल तक घोर तपश्चरण करके केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया । इस प्रकार विजयसुन्दरी रानीने त्रैलोक्य तीज व्रतको पालनकर देवों और मनुष्योंके उत्तम सुखोंको भोगकर निर्वाण पद प्राप्त किया । सो यदि और भी भव्य जीव श्रद्धा सहित व्रत पालें तो वे भी भी उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे ।

विजयसुन्दरी व्रत कियो, तीज त्रिलोक महान । सुरनरके सुख भोगके, 'दीप' लही निर्वाण ॥ १ ॥

श्री मुकुटसप्तमी व्रत कथा ।

[illegible] भाषा [illegible] ॥

[illegible] आहार दिया । और [illegible]

[illegible] होनेका कारण क्या है ? [illegible]

और वहासे चयकर मनुष्य भव [illegible] और यहां एक [illegible]

उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी ।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघनाद नृप ।

धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याएं उद्यानमें खेल रही थीं (मनोरंजन कर रही थीं) कि इन्हें सर्पने काट खाया सो नवकारमंत्रका आराधन करके देवी हुईं और वहांसे चयकर तुम्हारी पुत्री हुई हैं। सो इनका यह स्नेह भवांतरसे चला आरहा है। इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर दोनों कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिये और पुन मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमीको प्रोषध करतीं और " ॐ ह्रीं श्रीवृषभतीर्थंकरेभ्यो नमः " इस मंत्रका जाप्य करतीं, तथा अष्टद्रव्यसे श्री जिनालयमें जाकर भाव सहित जिनेन्द्रकी पूजा करतीं। इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया। पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात सात उपकरण जिनालयमें भेंट किये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अंतमें समाधि मरण करके सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रत्येन्द्र हुईं। वहांपर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यानमें विशेष समय बिताया। पश्चात् वहांसे चयकर ये दोनों इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठजी तथा मालीकी कन्याओंने व्रत (मुकुटसप्तमी) पालकर स्वर्गोंके अपूर्व सुख भोगे। अब वहांसे चयकर मनुष्य हो मोक्ष जावेंगे। धन्य है! जो और भव्य जीव भाव सहित यह व्रत धारण करें, तो वे भी इसी प्रकार सुखोंको प्राप्त होवेंगे।

सेठी अरु माली सुता, मुकुटसातमव्रत धार। भये इन्द्र प्रत्येन्द्र द्वय, अरु हुई हैं भवपार॥

श्री अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा।

ॐकार हृदय धरूं, सरस्वतिको शिर नाय। अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहूं बनाय॥ १॥

इसी राजगृही नगरमें मेघनाद नामके राजाके रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी परन्तु कोई पूर्व पापके उदयसे पुत्रविहीन होनेसे सदा दुखी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो कहने लगी—हे भर्तार! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालकको अपनी गोदमें खिलाऊंगी? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा, कि जब मैं पुत्रवती कहाऊंगी? अहा! देखो, संसारमें स्त्रियोंको पुत्रकी कितनी अभिलाषा होती है। वे इस ही इच्छासे दिनरात व्याकुल रहती अनेकों उपचार करतीं

और कितनी ही तो (जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोडकर धर्मतरुसे गिर जाती हैं। यह सुनकर राजाने रानीसे कहा–प्रिये ! चिंता न करो, पुण्यके उदयसे सब कुछ होता है। हम लोगोंने पूर्व जन्मोंमें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण निःसन्तान होरहे हैं। इसप्रकार वे राजा रानी परस्पर धैर्य बन्धाते कालक्षेप करते थे। एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभंकर नाम मुनिराजका शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये। वन्दना करनेके अनन्तर धर्म श्रवण करके राजाने पूछा–हे प्रभु ! आप त्रिकालज्ञानी हैं, आपको सब पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभासित होते हैं, सो कृपा कर यह बताइये कि किस कारणसे मेरे घर पुत्र नहीं होता है ? तब श्री गुरुने भवान्तरकी कथा विचारकर कहा–हे राजा ! पूर्व जन्ममें इस तुम्हारी रानीने मुनिदानमें अन्तराय किया था। इसी कारणसे तुम्हारे पुत्रका अन्तराय होरहा है। तब राजाने कहा–प्रभु, कृपया कोई यत्न बताइये, कि जिससे इस पापकर्मका अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले–वत्स, तुम अक्षय (फल) दशमीका व्रत करो। श्रावण सुदी १० को प्रोषध करके श्री जिनमन्दिरमें जाकर भाव सहित पूजन विधान करो, पञ्चामृताभिषेक करो और "ॐ नमो ऋषभाय" इस मन्त्रका जाप्य करो। यह व्रत दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मन्दिरजीमें भेंट करो, दश शास्त्र लिखाकर साधर्मियोंको भेंट करो, और भी दीनदुःखी जीवोंपर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो सातिशय पुण्य लाभ हो। इत्यादि विधि सुनकर राजा रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो व्रतके महात्म्य तथा पूर्व पापके क्षय होनेसे राजाको सात पुत्र और पांच कन्याएं हुईं। इस प्रकार कितनेक कालतक राजा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुख भोगते रहे। पश्चात् समाधिमरण करके पहिले स्वर्गमें देव हुए और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी भव्य जीव यदि श्रद्धासहित व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघनाद नृप सार। 'दीप' लही पंचम गती, नमूं त्रियोग सम्हार॥

५

धर्मोपदेश सुनकर मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया था। एक समय ये दोनों कन्याए उद्यानमें खेल रही थीं (मनोरंजन कर रही थीं) कि इन्हे सर्पने काट खाया सो नवकारमंत्रका आराधन करके देवी हुई और वहांसे चयकर तुम्हारी पुत्री हुई है। सो इनका यह स्नेह भवांतरसे चला आरहा है। इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर दोनो कन्याओंने प्रथम श्रावकके पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत लिये और पुनः मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। सो प्रतिवर्ष श्रावण सुदी सप्तमीको प्रोषध करतीं और " ॐ ह्रीं श्रीवृषभतीर्थंकरेभ्यो नमः " इस मंत्रका जाप्य करतीं, तथा अष्टद्रव्यसे श्री जिनालयमें जाकर भाव सहित जिनेन्द्रकी पूजा करतीं। इस प्रकार यह व्रत उन्होंने सात वर्ष तक विधिपूर्वक किया। पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करके सात सात उपकरण जिनालयमें भेंट किये। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और अंतमें समाधि मरण करके सोलहवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर इन्द्र और प्रत्येन्द्र हुईं। वहांपर देवोचित सुख भोगे और धर्मध्यानमें विशेष समय बिताया। पश्चात् वहांसे चयकर ये दोनो इन्द्र प्रत्येन्द्र मनुष्य होकर कर्म काटके मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार सेठनी तथा मालीकी कन्याओंने व्रत (मुकुटसप्तमी) पालकर स्वर्गोंके अपूर्व सुख भोगे। अब वहांसे चयकर मनुष्य हो मोक्ष जावेंगे। धन्य है! जो और भव्य जीव भाव सहित यह व्रत धारण करें, तो वे भी इसी प्रकार सुखोंको प्राप्त होवेंगे।

श्रेष्ठी अरु माली सुता, मुकुटसप्तमव्रत धार। भये इन्द्र प्रत्येन्द्र द्वय, अरु हुई हैं भवपार॥

श्री अक्षय (फल) दशमी व्रत कथा।

ॐकार हृदय धरू, सरस्वतिको शिर नाय। अक्षयदशमी व्रत कथा, भाषा कहू बनाय॥ १॥

इसी राजगृही नगरमें मेघनाद नामके राजाके रानी पृथ्वीदेवी अत्यन्त रूप और शीलवान थी परन्तु कोई पूर्व पापके उदयसे पुत्रविहीन होनेसे सदा दुःखी रहती थी। एक दिन अति आतुर हो कहने लगी—हे भर्तार! क्या कभी मैं कुलमण्डन स्वरूप बालकको अपनी गोदमें खिलाऊंगी? क्या कभी ऐसा शुभोदय होगा, कि जब मैं पुत्रवती कहाऊंगी? अहा! देखो, संसारमें स्त्रियोंको पुत्रकी कितनी अभिलाषा होती है। वे इस ही इच्छासे दिनरात व्याकुल रहती अनेकों उपचार करतीं

और कितनी ही तो (जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है) अपना कुलाचरण भी छोड़कर धर्मतत्त्वसे गिर जाती हैं। यह सुनकर राजाने रानीसे कहा–प्रिये ! चिंता न करो, पुण्यके उदयसे सब कुछ होता है। हम लोगोंने पूर्व जन्मोंमें कोई ऐसा ही कर्म किया होगा कि जिसके कारण नि सन्तान होरहे हैं। इसप्रकार वे राजा रानी परस्पर धैर्य बन्धाते कालक्षेप करते थे। एक दिन उनके शुभोदयसे श्री शुभकर नाम मुनिराजका शुभागमन हुआ, सो राजा रानी उनके दर्शनार्थ गये। वन्दना करनेके अनन्तर धर्म श्रवण करके राजाने पूछा–हे प्रभु ! आप त्रिकालज्ञानी हैं, आपको सब पदार्थ दर्पणवत् प्रतिभासित होते हैं, सो कृपा कर यह बताइये कि किस कारणसे मेरे घर पुत्र नहीं होता है ? तब श्री गुरुने भवांतरकी कथा विचारकर कहा–हे राजा ! पूर्व जन्ममें इस तुम्हारी रानीने मुनिदानमें अन्तराय किया था। इसी कारणसे तुम्हारे पुत्रका अन्तराय होरहा है। तब राजाने कहा–प्रभु, कृपया कोई यत्न बताइये, कि जिससे इस पापकर्मका अन्त आवे।

यह सुनकर श्री मुनिराज बोले–वत्स, तुम अक्षय (फल) दशमीका व्रत करो। श्रावण सुदी १० को प्रोषध करके श्री जिनमन्दिरमें जाकर भाव सहित पूजन विधान करो, पञ्चामृताभिषेक करो और "ॐ नमो ऋषभाय" इस मन्त्रका जाप्य करो। यह व्रत दश वर्ष तक करके उद्यापन करो, दश दश उपकरण श्री मन्दिरजीमें भेंट करो, दश शास्त्र लिखाकर साधर्मियोंको भेंट करो, और भी दीनदु खी जीवोंपर दया दान करो, विद्यादान देवो, अनाथोंकी रक्षा करो जिससे शीघ्र ही पापका नाश हो सातिशय पुण्य लाभ हो। इत्यादि विधि सुनकर राजा रानी आए और विधिपूर्वक व्रत पालन करके उद्यापन किया।

सो व्रतके महात्म्य तथा पूर्व पापके क्षय होनेसे राजाको सात पुत्र और पांच कन्याए हुईं। इस प्रकार कितनेक कालतक राजा दया धर्मको पालन करते हुए मनुष्योचित सुख भोगते रहे। पश्चात् समाधिमरण करके पहिले स्वर्गमें देव हुए और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार और भी भव्य जीव यदि श्रद्धासहित व्रत पालेंगे तो उन्हें भी उत्तमोत्तम सुखोंकी प्राप्ति होवेगी।

अक्षय दशमी व्रत थकी, मेघनाद नृप सार। 'दीप' लही पंचम गती, नमूं त्रियोग सम्हार॥

श्री श्रवणद्वादशी व्रत कथा ।

प्रणमू श्री अर्हन्त पद, प्रणमू सारद माय । श्रवण द्वादशीव्रत कथा, कहूं भव्य हितदाय ॥

मालवा प्रांतमें पद्मावतीपुर नामक एक नगर था। वहांका राजा नरब्रह्म और रानी विजयवल्लभा थी। इनके शीलवती नामकी एक अति कुरूपा, कानी, कुबड़ी कन्या उत्पन्न हुई। ज्यों ज्यों यह कन्या बड़ी होती थी त्यों त्यों मातापिताको चिंता बढ़ती जाती थी। एक दिन ये राजा रानी इस प्रकार चिंता कर रहे थे, कि इस कुरूपा कन्याका पाणिग्रहण कौन करेगा? कि पुण्य योगसे उन्हें वनमाली द्वारा यह समाचार मिला कि उद्यानमें श्रवणोत्तम नाम यतीश्वर देशदेशांतरोंमें विहार करते हुए आये हैं। सो राजा उत्साह सहित स्वजन और पुरजनोंको साथ लेकर श्री गुरुकी वन्दनाके लिये वनमें गया और तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभुको नमस्कार करके यथायोग्य स्थानमें बैठा।

श्रीगुरुने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया और मुनि श्रावकके धर्मका उपदेश देकर निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय धर्मका स्वरूप समझाया।

पश्चात् राजाने नतमस्तक हो पूछा हे प्रभो! यह मेरी पुत्री किस पापके उदयसे ऐसी कुरूपा हुई है?

तब श्रीगुरुने कहा कि अवंती देशमें पाडलपुर नामक नगर था। वहांका राजा सग्राममल्ल और रानी वसुन्धरा थी। उसी नगरमें देवशर्म नामक पुरोहित और उसकी कालसुरी नामक स्त्री थी। इस ब्राह्मणके अत्यन्त रूपवान एक कपिला नामकी कन्या थी। एक दिन यह कपिला कुमारी अपनी सखियोंके साथ अठखेलियां करती हुई वनक्रीडाके लिये नगरके बाहर गई, सो वहां श्री परम दिगम्बर साधुको देखकर उनकी अत्यन्त निंदा की और घृणाकी दृष्टिसे वह सखियोंसे कहने लगी-देखो री बहिनो, यह कैसा निर्लज्ज पापी पुरुष है कि पशुके समान नग्न फिरा करता है और अपना अङ्ग स्त्रियोंको दिखाता है। लोगोंको ठगनेके लिये लंघन करके वनमें बैठा रहता है, अथवा कभी कभी ऐसा नागा बनसे बस्तीमें फिरता रहता है। धिक्कार है इसके नरजन्म पानेको। इत्यादि अनेकों दुर्वचन कहकर मुनिके मस्तकपर धूल डाल दी, और थूक भी दिया।

सो अनेकों उपसर्ग आनेपर भी श्री मुनिराज तो ध्यानसे किंचिन्मात्र भी विचलित न हुए और समभावोंसे उपसर्ग जीतकर केवलज्ञान प्राप्त कर परम पदको प्राप्त हुए, परन्तु वह कपिला जिसने मदोन्मत्त होकर श्री योगिराजको उपसर्ग किया था, मरकर प्रथम नरकमे गई। वहासे निकलकर गधी हुई, फिर हाथिनी, फिर बिल्ली, फिर नागिनी, फिर चाडालनी हुई और वहासे मरकर तुम्हारे घर पुत्री हुई है। सो हे राजा! इस प्रकार मुनिनिंदाके पापसे इसकी यह दुर्गति हुई।

राजाने यह भवान्तरका वृत्तात सुनकर पूछा–हे नाथ! इसका यह पाप कैसे छूटे सो कृपाकर कहिये?

तब स्वामीने कहा–राजा! सुनो! संसारमे ऐसा कौनसा कार्य है कि जिसका उपाय न हो। यदि मनुष्य अपने पूर्व कर्मोंकी आलोचना निंदा व गर्हा करके आगेको उन पापोंसे पराङ्मुख होकर पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा कर और पूर्व पापोंकी निर्जरार्थ व्रतादिक करे तो पापोंसे छूट सकता है।

इसलिये यदि यह पुत्री सम्यक्त्वपूर्वक श्रावण शुक्ल द्वादशी व्रतको धारण करे तो इस कष्टसे छूट सकती है। इस व्रतकी विधि निम्न प्रकार है कि श्रावण सुदी एकादशीको प्रात काल स्नानादि करके श्री जिन पूजन करे और पश्चात् भोजन करके सामायिकके समय द्वादशी व्रतके उपवासकी धारणा (नियम) करे। इसी समयसे अपना काल धर्मध्यानमें बितावे और द्वादशीको भी नियमानुसार उठकर नित्यक्रियासे निवृत्त हो श्री जिनमन्दिरमे जाकर उत्साह सहित पचामृतसे अभिषेक पूर्वक अष्टद्रव्योंसे पूजन करे। अर्थात् पाठ और मन्त्रोंको स्पष्ट बोलकर प्रासुक अष्टद्रव्य चढावे और णमोकार मत्र (३५ अक्षर) का पुष्पोंद्वारा १०८ बार जाप्य करे। सामायिक स्वाध्यायादि धर्मध्यानमे काल बितावे। फिर त्रयोदशीको इसी प्रकार अभिषेक पूर्वक पूजनादि करनेके पश्चात् किसी अतिथि वा दीन दुःखीको भोजन दान करके आप भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षमे एकबार करे। सो बारह वर्ष तक कर। पश्चात् उत्साह सहित उद्यापन करे।

अर्थात् चारमुखी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करावे। अथवा जहा मन्दिर हो वहा चार महान ग्रन्थ लिखाकर जिनालयमे पधरावे, वेष्टन चौकी छत्र चमरादि उपकरण चढावे, परोपकारमे द्रव्य खर्च करे, व्यापाररहितोंको व्यापारार्थ पूजी लगा देवे, पठनाभिलाषियोंको छात्रवृत्ति देकर पढनेको भेजे, रोगीको औषधि, निःसहाय दीनोंको अन्न वस्त्र औषधादि देवे, भयभीत

जीवोंको भय रहित करे, मरतेको बचावे इत्यादि। और यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

इस व्रतके फलसे यह तेरी कन्या यहासे मरण करके तेरे ही घर अर्ककेतु नाम पुत्र होगा, और उनसे छोटा चन्द्रकेतु होगा। सो चन्द्रकेतु युद्धमे मरकर पीछे अर्ककेतुका पुत्र होगा। पश्चात् अर्ककेतु कितनेक काल राज्य करके अन्तमे माता सहित जिनदीक्षा लेगा सो समाधिमरण करके बारहवें स्वर्गमे महर्द्धिक देव होगा और फिर मनुष्य भव लेकर तपके योगसे केवलज्ञानको प्राप्त हो मोक्षपद प्राप्त करेगा। इसकी माता विजयवल्लभा प्रथम स्वर्गमे देवी होगी। चन्द्रकेतुका जीव भी अवसर पाकर सिद्धपदको प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा व्रतकी विधि और उसका फल सुनकर घर आया और यथाविधि कन्याने व्रत पालन करके श्री गुरुके कथनानुसार उत्तमोत्तम फल प्राप्त किये। इसप्रकार और भी जो स्त्री पुरुष श्रद्धासहित इस व्रतको पालन करेंगे वे भी इसी प्रकार उत्तम फल पावेंगे।

श्रवण द्वादशी व्रत कियो शीलवती चित धार। किये आठ विधि नष्ट सब, लह्यो सिद्धपद सार॥

श्री रोहिणी व्रत कथा।

वन्दू श्री अर्हन्त पद, मन वच शीश नमाय। कहू रोहिणी व्रत कथा, दुख दरिद्र नश जाय।

अङ्ग देशमे चम्पापुरी नाम नगरीका स्वामी मघवा नाम राजा था, उसकी परमसुन्दरी लक्ष्मीमती नामकी रानी थी। उसके सात गुणवान पुत्र और एक रोहिणी नामकी कन्या थी। एक समय राजाने निमित्तज्ञानीसे पूछा कि मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? तब निमित्तज्ञानीने विचार कर कहा कि हस्तिनापुरका राजा वीतशोक और उसकी रानी विद्युत्प्रभाका पुत्र अशोक तेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करेगा।

यह सुनकर राजाने स्वयंवर मंडप रचाया और सब देशोंके राजकुमारोंको आमंत्रण पत्र भेजे। जब नियत समयपर राजकुमारगण एकत्रित हुए तो कन्या रोहिणी एक सुंदर पुष्पमाला लिये हुए सभामे आई, और सब राजकुमारोंका परिचय

पानेके अनन्तर अन्तमे राजकुमार अशोकके गलेमे वरमाला डाल दी। राजकुमार अशोक रोहिणीको पाणिग्रहण कर घर ले आया और कितनेक काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया।

एक समय हस्तिनापुरके वनमे श्री चारण मुनिराज आये। यह समाचार सुनकर राजा निज प्रिया सहित श्री गुरुकी वदनाको गया और तीन प्रदक्षिणा दे दण्डवत् करके बैठ गया। पश्चात् श्री गुरुके मुखसे तत्वोपदेश सुनकर राजा हर्षित मन हो पूछने लगा—स्वामी मेरी रानी इतनी शातचित्त क्यों है ?

तब श्रीगुरुने कहा, सुनो—इसी नगरमे वस्तुपाल नामका राजा था, और उसका धनमित्र नामका मित्र था। उस धनमित्रके एक दुर्गंधा कन्या उत्पन्न हुई। सो उस कन्याको देखकर माता पिता निरन्तर चिन्तावान रहते, कि कन्याको कौन वरेगा ? पश्चात् जब वह कन्या सयानी हुई तो धनमित्रने उसका व्याह धनका लोभ देकर एक श्रीषेण नामके लडके (जो कि उसके मित्र सुमित्रका पुत्र था) से कर दिया।

वह सुमित्रका पुत्र श्रीषेण अत्यन्त व्यसनासक्त था। एक समय वह जुआमे अपना सब धन हार गया, तब चोरी करनेको किसीके घरमे घुसा। उसे यमदड नाम कोटपालने पकड लिया, और दृढ बंधनसे बाध दिया। इसी कठिन अवसरमें धनमित्रने श्रीषेणसे अपनी पुत्रीसे व्याह करनेका वचन ले लिया था। इसीलिये श्रीषेणने उससे व्याह तो कर लिया, परन्तु वह स्त्रीके शरीरकी अत्यन्त दुर्गंधिसे पीडित होकर एक ही मासमे उसे परित्याग करके देशातरको चला गया। निदान वह दुर्गंधा अत्यन्त व्याकुल हुई और अपने पूर्व पापोका फल भोगने लगी।

एक समय अमृतसेन नामके मुनिराज इसी नगरके वनमे विहार करते हुए आये। यह जानकर सकल नगरलोक वन्दनाको गये और धनमित्र भी अपनी दुर्गंधा कन्या सहित वन्दनाको गया। सो धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर उसने अपनी पुत्रीके भवान्तर पूछे, तब श्रीगुरुने कहाः—

सोरठ देशमे गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है। वहा भूपाल नामक राजा राज्य करता था। उसके सिंधुमती नामकी रानी थी। एक समय वसतऋतुमे राजा रानी सहित वनक्रीडाको चला सो मार्गमे श्री मुनिराजको देखकर राजाने

रानीसे कहा कि तुम घर जाकर श्रीगुरुके आहारकी विधि लगाओ। राजाज्ञासे यद्यपि रानी घर तो आई, तथापि वनक्रीडा समय वियोग जनित संतापसे तप्त उस रानीने इस वियोगका सम्पूर्ण अपराध मुनिराजके माथे मढ दिया और जब वे आहारको नगरीमें आये तो पडगाहकर कडुवी तूंबीका आहार दिया, जिससे मुनिके शरीरमें अत्यन्त वेदना उत्पन्न होगई, और उन्होंने तत्काल प्राण त्याग कर दिये। नगरके लोग यह वार्ता सुनकर आये, और मुनिराजके मृतक शरीरकी अन्तिम क्रिया कर रानीके इस दुष्कृत्यकी निंदा करते हुए निज निज स्थानको चले गये। राजाको भी इस दुष्कृत्यकी खबर लग गई सो उन्होंने रानीको तुरन्त ही नगर बाहर निकाल दिया।

इस पापसे रानीके शरीरमें उसी जन्ममें कोढ उत्पन्न होगया, जिससे शरीर गल गलकर गिरने लगा तथा शीत उष्ण और भूख प्यासकी वेदनासे उसका चित्त विह्वल रहने लगा। इस प्रकार वह रौद्र भावोंसे मरकर नर्कमें गई। वहांपर भी मारन, ताडन, छेदन, भेदन, शूलीरोहणादि, घोरान्घोर दुःख भोगे। वहांसे निकल कर गायके पेटमें अवतार लिया और अब यह तेरे घर दुर्गंधा कन्या हुई है।

यह पूर्व वृत्तांत सुनकर धनमित्रने पूछा—हे नाथ! कोई व्रत विधानादि धर्मकार्य बताइये जिससे यह पातक दूर हो। तब स्वामीने कहा कि सम्यग्दर्शन सहित रोहणीव्रत पालन करो अर्थात् प्रतिमासमें रोहिणी नामका नक्षत्र जिस दिन होवे, उस दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर और श्री जिन चैत्यालयमें जाकर धर्मध्यान सहित सोलह पहर व्यतीत करे, अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, धर्मचर्चा, पूजा, अभिषेकादिमें काल वितावे और स्वशक्ति अनुसार दान करे। इस प्रकार यह व्रत ५ वर्ष और ५ मास तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। अर्थात् छत्र, चमर, ध्वजा, पाटला आदि उपकरण मन्दिरमें चढावे, साधुजनों व साधर्मी तथा विद्यार्थियोंको शास्त्र देवे, वेष्टन देवे, चारों प्रकारके दान देवे और जो द्रव्य खर्च करनेकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे।

दुर्गंधाने मुनिके मुखसे व्रतकी विधि सुनकर श्रद्धापूर्वक उसे धारण कर पालन किया और आयुके अन्तमें सन्यास सहित मरण कर प्रथम स्वर्गमें देवी हुई। वहांसे आकर मघवा राजाकी पुत्री और तेरी परमप्रिया स्त्री हुई है। इस प्रकार

रानीके भवान्तर सुनकर राजाने अपने भवान्तर पूछे। तब स्वामीने कहा—तू प्रथम भवमें भील था। तूने मुनिराजको घोर उपसर्ग किया, सो तू वहांसे मरकर पापके फलसे सातवें नर्क गया। वहांसे तेतीस सागर दुःख भोगकर निकला। सो अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ तूने एक वणिकके घर जन्म लिया। सो अत्यन्त घृणित शरीर पाया। लोग दुर्गंधिके मारे पास न आने देते थे। तब तूने मुनिराजके उपदेशसे रोहिणी व्रत किया, उसके फलसे तू स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे चयकर विदेह क्षेत्रमें अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुआ। वहांसे दीक्षा ले [redacted] करके देवेन्द्र हुआ और स्वर्गसे आकर तू अशोक नामका राजा हुआ है।

राजा अशोक यह वृत्तान्त सुनकर घर आया और कुछ कालतक सानन्द राज्य भोगा, पश्चात् एक दिन वहां वासुपूज्य भगवानका समवसरण आया सुनकर राजा वन्दनाको गया और धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त वैराग्यको प्राप्त हो श्री जिन दीक्षा ली। रोहिणी रानीने भी दीक्षा ग्रहण की। सो राजा अशोकने तो उसी भवमें शुक्लध्यानसे घाति कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये और रोहिणी आर्या भी समाधिमरण कर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें देव हुई, अब वह देव वहांसे चयकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार राजा अशोक और रानी रोहिणी, रोहिणीव्रतके प्रभावसे स्वर्गादिकके सुख भोगकर मोक्षको प्राप्त हुए व होंगे। इसी प्रकार अन्य भव्य जीव भी श्रद्धा सहित व्रत पालेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुख पावेंगे।

व्रत रोहिणी रोहिणी कियो, अरु अशोक भूपाल। स्वर्ग मोक्ष संपति लही, 'दीप' नवावत भाल ॥

श्री आकाशपंचमी व्रत कथा।

वर्द्धमान जिनको नमूं, करूं हृदय शुभ ध्यान। कथाऽऽकाश पंचमि तनी, कहूं स्वपर हित जान ॥

भारतवर्षके सोरठ देशमें तिलकपुर नामका एक विशाल नगर था। वहां महीपाल नामका राजा और विचक्षणा नामा रानी थी। उसी नगरमें भद्रशाह नामका व्यापारी रहता था। उसकी नन्दा नाम स्त्रीसे विशाला नामकी पुत्री उत्पन्न थी। जिसका नाम ... थी, तथापि इसके शरीरमें कोढ होजानेसे सारी सुन्दरता नष्ट होगई थी।

इसलिये उसके माता पिता तथा वह कन्या स्वयम् भी रोया करते थे, परन्तु कर्मोंसे क्या वश है ? निदान माताके उपदेशसे पुत्री धर्मध्यानमें रत रहने लगी, जिससे कुछ दुःख कम हुआ।

एक दिन एक वैद्य आया और उसने सिद्धचक्रकी आराधना करके औषधि दी जिससे उस कन्याका रोग दूर होगया। तब उस भद्रशाहने अपनी कन्या उसी वैद्यको ब्याह दी। पश्चात् वह पिंगल वैद्य उस विशाला नामी वणिक पुत्रीके साथ कितने ही दिन पीछे देशाटन करता हुआ चित्तौड़गढ़की ओर आया। वहांपर भीलोंने उसे मारकर सब धन लूट लिया। निदान विशाला वहांसे पति और द्रव्य रहित हुई नगरके जिनालयमें गई और जिनराजके दर्शन करके वहां तिष्ठे हुए श्रीगुरुको नमस्कार करके बोली–प्रभु ! मैं अनाथनी हूं, मेरा सर्वस्व खो गया, पति भी मारा गया और द्रव्य भी लुट गया। अब मुझे कुछ नहीं सूझता है कि क्या करूं, कृपा कर कुछ कल्याणका मार्ग बताइये।

तब मुनिराजने कहा–"बेटी ! सुनो, यह जीव सदैव अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका शुभाशुभ फल भोगता है। तू प्रथम जन्ममें इसी नगरमें वेश्या थी। तू रूपवान तो थी ही, परन्तु गायन विद्यामें भी निपुण थी। एक समय सोमदत्त नामके मुनिराज यहां आये। यह सुनकर नगर लोग वन्दनाको गये और बहुत उत्साहसे उत्सव किया। सो जैसे सूर्यका प्रकाश उल्लूको अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार कुछ मिथ्यात्वी विधर्मी लोगोंने मुनिसे वाद विवाद किया और अन्तमें हार कर वेश्या (तुझे ही) को मुनिके पास ठगनेके लिये (भ्रष्ट करनेको) भेजा सो तूने पूर्ण स्त्री चरित्र फैलाया, सब प्रकार रिझाया। शरीरका आलिंगन भी किया, परन्तु जैसे सूर्यपर धूल फेंकनेसे सूर्यका कुछ बिगड़ता ही नहीं किंतु फेंकनेवाले हीका उल्टा बिगाड़ होता है, उसी प्रकार मुनिराज तो अचल मेरुवत् स्थिर रहे, और तू हार मान कर लौट आई। इससे उन मिथ्यात्वी अधर्मियोंको बड़ा दुःख हुआ, और तुझे भी बहुत पश्चाताप हुआ। अन्तमें तुझे कोढ़ होगया सो दुःखित अवस्थामें मरकर तू चौथे नर्क गई। वहांसे आकर तू यहां वणिकके घर पुत्री हुई है। यहां भी तुझे सफेद कोढ़ हुआ था सो पिंगल वैद्यने तुझे अच्छा किया और उसीसे तेरा पाणिग्रहण भी हुआ था। पश्चात् पूर्व पापके उदयसे चोरोंने उसे मार डाला, और तू उनसे बचकर यहांतक आई है। अब यदि तू कुछ धर्माचरण धारण करेगी, तो शीघ्र ही इस पापसे छूटेगी। इसलिये सबसे

प्रथम तु सम्यग्दर्शनको स्वीकार कर अर्थात श्री अर्हंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिन भगवानके कहे हुए धर्मशास्त्रके सिवाय अन्य मिथ्या देव गुरु और धर्मका छोड़ जीवादिक सात तत्वोंका श्रद्धान कर और सम्यग्दर्शनके निःशङ्कित आदि ८ अंगोंका पालन करके उसके २५ मल—दोषोंका त्यागकर, तब निर्मल सम्यग्दर्शन सधेगा। इस प्रकार सम्यक्त्व पूर्वक श्रावक अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण आदि १२ व्रतोंको पालन करते हुए आकाशपंचमी व्रतका भी पालन कर।

यह व्रत भादो सुदी ५ को किया जाता है। इस दिन चार प्रकारका आहार त्यागकर उपवास धारण करे, और अष्ट प्रकारके द्रव्यसे श्रीजिनालयमें जाकर भगवानकी अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात रात्रिके समय खुले मैदानमें व छत (अगासी) पर बैठकर भजन पूर्वक जागरण करे। तथा वहां भी सिंहासन रखकर श्री चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा स्थापन कर, और प्रत्येक पहरमें अभिषेक पूर्वक पूजन कर और यदि उस समय उपसर्ग वर्षा आदिके कारण कितने ही उपसर्ग आवें तो सब सहन करे परन्तु स्थानको न छोड़े। नौ तो समय महामंत्र नवकारके १०८ जाप करे। इस प्रकार ५ वर्ष तक कर। जब व्रत पूरा हो जावे तो उत्साह सहित उद्यापन करे।

छत्र, चमर, सिंहासन, तोरण, पूजनके बर्तन आदि प्रत्येक ५ (पांच) नग मन्दिरमें भेट करे और कमसे कम पांच शास्त्र पधरावे। चार प्रकारके संघको चारों प्रकारके दान देवे। और भी प्रभावना विशेष कर। इस प्रकारसे विशाला कन्याने श्रद्धानपूर्वक बारह व्रत स्वीकार किये और इस आकाशपञ्चमी व्रतको भी विधि सहित पालन किया। पश्चात् समाधिमरण कर वह चौथे स्वर्गमें मणिभद्र नामका देव हुआ। वहां उसने देवांगनाओं सहित क्रीड़ा करते हुए अनेक तीर्थोंके दर्शन, पूजा, वन्दना, तथा समोशरण आदिकी वंदना की। इसप्रकार सात सागरकी आयु पूर्णकर उज्जैन नगरमें प्रियगुप्त राजा नाम राजाके यहां नागमती नाम रानीसे महानन्द नामक पुत्र हुआ। सो कितनेक काल राज्योचित सुख भोगे। पश्चात् एक दिन नगर बाहर नग्न मुनिराजके दर्शन कर और उनके मुखसे संसारसे पार उतारनेवाले धर्मका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर जिन दीक्षा अंगीकार की। और शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इसप्रकार विशाला नामकी वणिक कन्याने व्रतके प्रभावसे स्वर्ग और मोक्षका पद प्राप्त किया, तो यदि श्रद्धा सहित

६

अन्य जीव व्रत पालेंगे तो क्यों नहीं उत्तम सुखोंको प्राप्त होवेंगे ? अवश्य होंगे।

सुना विशारा वणिक व्रत, आकाश पचमी पाल। स्वर्ग मोक्ष सम्पति लही, 'दीप' नमावत भाल॥

श्री कोकिलापञ्चमी व्रत कथा।

ॐकार वाणी नमू, स्याद्वाद मय सार। जा प्रसाद मगति मिले, कथा कहू सुखकार॥

कुरुजागल देशमे गगा नदीके किनारे राजनगर है, वहाका राजा शौरसेन न्यायपरायण और धर्मात्मा था। इसी नगरमे दो वणिक श्रेष्ठि रहते थे। एकका नाम धनपाल और दूसरेका नाम जिनभक्त था। धनपाल सेठके धनमती नामकी सेठानीसे धनभद्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और जिनभक्त सेठके घर जिनमती नामकी कन्या उत्पन्न हुई सो कर्मयोगसे इन दोनों वर कन्या (धनभद्र और जिनमती) का पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। तब जिनमति पतिके साथ ससुराल गई और गृहस्थोंकी रीतिके अनुसार अपने पतिके साथ नाना प्रकारके सुख भोगने लगी, परन्तु पूर्वकर्म सयोगसे जिनमति और उसकी सासुमे अनबनाव सा रहने लगा। कुछ कालके अनन्तर धनपाल सेठ कालवश हुआ तब जिनमतीने सासुसे कहा—

मातानी! पतिकी क्रिया कर्म कीजिए और दानादिक शुभ कर्म करिए। इस पर सासुने ध्यान नहीं दिया किन्तु उल्टा उसने पहुंचे दिन करके पूजा होम आदिका सामान जो बहूने इकट्ठा कर रखा था रात्रिको उठकर भक्षण कर लिया सो तिल आदि पदार्थोंके भक्षण करनेसे उसे अजीर्ण होगया और वह दुर्ध्यान प्राणसे मरकर उसी घरमें कोकिला (गृहगोधा) हुई। जिनमति अपने पति धनभद्र सहित सुखसे काल क्षेप करने लगी। उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, सो हर समय अपने पूर्व बैरके कारण जिनमतिके ऊपर बीट (मल) कर दिया करे। इस कारण जिनमती बहुत दुःखित रहने लगी।

एक दिन भाग्योदयसे श्री मुनिराज विहार करते हुए वहां आ गए। सो जिनमती स्नान कर पवित्र वस्त्र पहिन कर श्री गुरुके दर्शनको गई। और भक्तिपूर्वक वन्दना करके शांतिपूर्वक, सत्यार्थ देवगुरुधर्मका व्याख्यान सुना। पश्चात् नतमस्तक होकर बोली —हे प्रभु! यह कोकिला नामका न जाने कौन दुष्ट जीवधारी है, जो हमको निशदिन दुःख देता है। तब

श्री गुरुने कहा—यह तेरी सासु धनमतीका जीव है। इसने पूर्वभवमें पूजा होम आदिका सामान नैवेद्य-तिल आदि भक्षण किया जिससे यह अजीर्ण रोगसे आयुकी उदीरणा कर मरी और कोकिला हुई है, सो उसी भवके वैरके कारण यह तुझे कष्ट पहुचाती है। तब जिनमतिने कहा स्वामीजी! यह पाप कैसे छूट सकता है?

श्री मुनिराजने उत्तर दिया—बेटी! संसारमें कुछ भी कठिन नहीं है। यथार्थमें सब काम परिश्रमसे सरल हो जाते हैं। तुम अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी धर्मपर श्रद्धा रखकर, कोकिला पचमी व्रत पालन करो तो निःसन्देह यह उपद्रव दूर हो जायगा। इसके लिये तुम आषाड़ सुदी पचमीसे ५ मास तक प्रत्येक कृष्ण पक्षकी ५ को, इसप्रकार एक वर्षकी पाच पाच पञ्चमी पाच वर्षों तक करो। अर्थात् इस दिनोंमें प्रोषह धारण कर अभिषेकपूर्वक जिन पूजा करो और धर्मध्यानमें धारणा पारणा सहित सोलह पहर व्यतीत करो। सुपात्रोंमें भक्ति तथा दीन दुखी जीवोंको करुणापूर्वक दान देवो, पश्चात् उद्यापन करो। पाच जिनबिम्ब पधराओ, पाच शास्त्र लिखाओ, पाच वर्णका पच परमेष्ठीका मण्डल माडकर श्री जिनपूजा विधान करो। पाच प्रकारका पक्वान्न बनाकर चार संघको भोजन कराओ। पाच गागर पच प्रकारके मेवोंसे भर-कर श्रावकोंको भेंट दो। पाच ध्वजा चैत्यालयमें चढ़ाओ। पाच चदेवा, पाच अछार, पाच छत्र, पाच चमर आदि पाच पाच उपकरण बनवाकर मंदिरमें भेंट चढ़ाओ। विद्यालय बनवावो, श्राविकाशालाए खोलो, रोगी जीवोंके रोग निवारणार्थ औषधालय नियत करो, इस प्रकार शक्ति प्रमाण चतुर्विध दानशालाएं खोलकर स्वपर हित करो। तथा श्रद्धा सहित व्रत उपवास करो। यह सुनकर जिनमतिने मुनिको नमस्कार करके व्रत लिया। और उसकी सासु जो कोकिला हुई थी, उसने भी अपने भवान्तरकी कथा गुरुमुखसे सुनकर अपनी आत्मनिंदा की और शुभ भावोंसे मरकर स्वर्गमें देवी हुई। जिनमती और धनभद्र भी व्रतके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुए। अब वहासे आकर विदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष जावेंगे। इस प्रकार जिन-मती और धनभद्रने कोकिला पचमी व्रत पालन कर उत्तम गतिका बन्ध किया। जो अन्य नरनारी यह व्रत करें तो क्यों न उत्तम पदको प्राप्त होंगे? अवश्य ही होंगे।

धनभद्र अरु जिनमती, कोकिल पचमी सार। कियो अरु शुभ बंध कर, जासे मुक्ति मझार॥

बनवाओ, [illegible] जिनबिंब पधरावो, [illegible] जिन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करावो। [illegible] शास्त्रोंका प्रकाशन करो। [illegible] सब प्रकारके उपकरण मन्दिरोंमें चढ़ावो। [illegible] छात्रोंको भोजन करावो। चार प्रकारके (आहार औषध शास्त्र और अभयदान) दान देवो।

इस प्रकार दम्पतिने व्रतकी विधि सुन मुनिराजकी साक्षीपूर्वक व्रत ग्रहण करके विधि सहित पालन किया। कुछ दिनमें अशुभ कर्मकी निर्जरा होनेसे उनका शरीर बिलकुल निरोग होगया और आयुके अन्तमें सन्यास मरण करके वे दम्पति स्वर्गमें रत्नचूल और रत्नमाला नामक देव देवी हुए। सो बहुत काल तक सुख भोगते और नन्दीश्वर आदि अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा वन्दना करते कालक्षेप करते रहे। अन्तमें आयु पूर्ण कर वहांसे चयकर तुम राजा हुए हो और वह रत्नमालादेवी तुम्हारी पट्टरानी पद्मिनी हुई है। सो [illegible] तुम दोनों पूर्व भवोंका सम्बन्ध होनेसे ही प्रेम विशेष हुआ है। यह बातें सुनकर राजाको भवभोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, सो उसने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देकर आप दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण किया। और तपके प्रभावसे थोड़े ही कालमें केवलज्ञान प्राप्त करके वे सिद्धपदको प्राप्त हुए।

और रानी पद्मिनीके जीवने भी दीक्षा ली, सो [illegible] भी तपके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे चय मनुष्य भव लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगा। इसप्रकार ईश्वरदत्त सेठ और चन्दनाने इस चन्दन षष्ठी व्रतके प्रभावसे स्वर्गके सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया तथा और जो नरनारी यह व्रत पालेंगे, वे भी अवश्य उत्तम पद पावेंगे।

चन्दन षष्ठी व्रत धर्यो, ईश्वरचन्द्र सुजान। अरु तिस नारी चन्दना, पायो सुख महान॥

श्री निर्दोष सप्तमी व्रत कथा।

सिद्ध आठ अरु बीस गुण नमूं साधु निर्ग्रन्थ। सप्तमी व्रत निर्दोषकी, कथा कहूं गुण ग्रन्थ॥

मगध देशके पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें पृथ्वीपाल राजा करता था। उसकी रानीका नाम मदनावली था। इसी नगरमें अर्हद्दास नामका एक सेठ रहता था जिसकी लक्ष्मीमती नामकी स्त्री थी और एक दूसरा सेठ धनपति जिसकी स्त्रीका

नाम नन्दनी था, रहता था। नन्दनी सेठ नीके मुरारी नामका एक पुत्र था सो सांपके काटनेसे मर गया, इसलिए नन्दनी तथा उसके घरके लोग अत्यत करुणाजनक विलाप करते थे अर्थात् सब ही शोकमें निमग्न थे। नन्दनी तो बहुत ही शोकाकुल रहती थी। उसे ज्यों ज्यों कोई समझाता था त्यों त्यों अधिकाधिक शोक करती थी। एक दिन नन्दनीके रुदन (जिसमें पुत्रके गुणगान करती हुई रोती थी) को सुनकर लक्ष्मीमती सेठानीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, तब वह सोचने लगी कि नन्दनीके घर तो कोई मगल कार्य नहीं है, अर्थात् ब्याह व पुत्र जन्मादि उत्सव तो कुछ भी नहीं है तब किस कारण गायन हो रहा है ? अच्छा, चलकर पूछ तो सही कि क्या बात है ? ऐसा विचार कर लक्ष्मीमती सहज स्वभावसे घूमती हुई नन्दनीके घर गई और नन्दनीसे हसते हसते पूछा—ऐ बहिन ! तुम्हारे घर कोई मगल कार्य है ऐसा तो सुना ही नहीं गया, तब यह गायन किसलिये हो रहा है, कृपया बताओ।

तब नन्दनी रीस करके बोली—अरी बाई ! तुझे हँसीकी पड़ी है और मुझपर तो दु खका पहाड़ टूट पड़ा है। मेरा कुलका दीपक, प्यारा, आखोंका तारा पुत्र सर्पके काटनेसे मर गया है, इसीसे मेरी नींद और भूख प्यास सब चली गई है, मुझे ससारमे अन्धेरा लगता है। दु खियाने दु ख रोया, सु खियाने हस दिया। मुझे रोना आता है और तुझे हसना आता है। जा, जा ! अपने घर। एक दिन तुझे भी अतुल दु ख आवेगा, तब जानेगी कि दूसरेका दु ख कैसा होता है ?

इसपर लक्ष्मीमती अपने घर चली गई और नन्दनीने उससे निष्कारण वैर कर साप मगाया और एक घड़ेमे धरवा कर लक्ष्मीमतीके घर भिजवा दिया, और कहला दिया कि इस घड़ेमे सुन्दर हार रक्खा है सो तुम पहिरो। नन्दनीका अभिप्राय था कि जब लक्ष्मीमती घड़ेमे हाथ डालेगी तो साप इसे काटेगा और यह दु खियोंकी हँसी करनेका फल पावेगी।

जब दासी लक्ष्मीमतीके घर वह विषैले सापका घड़ा लेकर गई, और यथायोग्य सत्रुणाके वचन कहकर घड़ा भेंट कर दिया, तब लक्ष्मीमतीने दासीको तो पारितोषक देकर विदा किया। और आपने घड़ेको उघाड़ कर उसमेसे हार निकाल कर पहिर लिया (लक्ष्मीमतीके पुण्यके प्रभावसे सापका हार हो गया है) और हर्ष सहित जिनालयको वन्दना निमित्त गई। सो मदनावती रानीने उसे देख लिया और राजा से लक्ष्मीमतीके जैसा हार मगा देनेके लिये हठ करने लगी।

इसपर राजाने अर्हद्दास सेठको बुलाकर कहा—हे सेठ ! जैसा हार तुम्हारी सेठानीका है वैसा ही रानीके लिये बनवा दो और जो द्रव्य लगे सो भण्डारसे ले जाओ। तब अर्हद्दास श्रेष्ठिने सेठानीसे लेकर वही हार राजाको दिया सो राजाके हाथमें पहुंचते ही हारका पुनः सर्प हो गया। इसप्रकार वह सांप अर्हद्दासके हाथमें हार और राजाके हाथमें सांप होजाता था। यह देखकर राजा व सभाजन सभी आश्चर्ययुक्त हो हारका वृत्तांत पूछने लगे, परन्तु सेठ कुछ भी कारण न बता सका।

भाग्योदयसे वहां मुनि संघ आया सो राजा और प्रजा सभी वन्दनाको गये। वन्दना कर धर्मोपदेश सुना और अन्तमें राजाने यह हार और सांपवाली आश्चर्यकी बात पूछी तब मुनिराजने कहा—हे राजा ! इस सेठने पूर्वभवमें निर्दोष सप्तमी व्रत किया है उसीके पुण्य फलसे यह सांपका हार बन जाता है।

और तो बात ही क्या है, इस व्रतके फलसे स्वर्ग और अनुक्रमसे मोक्षपद भी प्राप्त होता है, और इस व्रतकी विधि इसप्रकार है सो सुनो —

भादों सुदी ७ को आरम्भ करके परिग्रह त्यागकर शेष समस्त आरम्भ व परिग्रह का त्याग करके श्री जिन मंदिरमें जाय और प्रभुका अभिषेक आरम्भ करे। अर्थात् बड़ासा दूधका कुण्ड भरके उसमें प्रतिमा स्थापन करे और पंचामृतका स्नान करानेके पश्चात् अष्टद्रव्यसे भाव सहित पूजन करे। त्रिकाल सामायिक करे और कथा पाठ करे। इसप्रकार दिन रात धर्मध्यानमें बितावे। पश्चात् दूसरे दिन हर्षोत्सव सहित जिन देवका पूजन अभिषेक करके अतिथियोंको भोजन कराकर और दीन दुःखियोंको यथा शक्ति दान देकर आप भोजन करे। इसप्रकार सात वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् विधिपूर्वक उद्यापन करे और यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दूने वर्ष तक व्रत करे।

उद्यापन इस प्रकार करे—बारह प्रकारका धान्य और बारह प्रकारके फल, तथा सब श्रावकोंको बांटे। बारह कलश, झारी, झालर, चंदेवा आदि समस्त उपकरण जिन मंदिरमें चढ़ावे, बारह शास्त्र लिखाकर पधरावे और चतुर्विध दान करे।

राजाने यह सब व्रत विधान सुनकर स्वशक्ति अनुसार श्रद्धा सहित इस व्रतको पालन किया और अन्तमें आयु पूर्णकर (समाधिमरण कर) सातवें स्वर्गमें देव हुआ। और भी जो भव्यजीव श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त होंगे।

नरपति पृथ्वीपाल अरु, अर्हद्दास गुणवान। मन सातम निर्दोष कर, लहो स्वर्ग सुख दान॥

श्री निःशल्य अष्टमी व्रत कथा।

वन्दू नेमि जिनेन्द्र पद, बाईसवें अवतार। कथा निशल्य आठम तनी, कहूं सु सदाचार॥

भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें सोरठ नामका देश है (वर्तमानमें इसे काठियावाड कहते हैं) इस देशमें द्वारका नामकी सुन्दर नगरी है, यहींपर श्री नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकरका जन्म हुआ था। जिस समय भगवान नेमिनाथ दीक्षा लेकर गिरनार पर्वतपर तपश्चरण करते थे और द्वारकामें श्री कृष्णचन्द्रजी नवम नारायण राज्य करते थे, ये त्रिखण्डी नारायण थे। इनकी मुख्य पट्टरानी सत्यभामा थी सो सत्यभामाके द्वारा एक बार नारदका अपमान हुआ, इस पर नारदने क्रोधवश इसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे रुक्मिणि नामकी एक राजकन्यासे नारायणका विवाह कराकर सत्यभामाके सिरपर सौतका नाम करा दिया। निःसंदेह सौतका स्त्रियोंको बहुत बडा दुःख होता है। एक समय जब भगवान नेमिनाथको केवलज्ञान प्रगट हो गया तो श्रीकृष्ण रानियों और पुरजनों सहित वन्दनाको गये और वन्दना करके धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर रुक्मिणि नामकी रानीके भवान्तर पूछे।

तब भगवानने कहा कि मगधदेशमें राजग्रही नगर है वहांपर रूप और यौवनके मदसे पूर्ण एक लक्ष्मीमती नामकी ब्राह्मणी रहती थी।

एक दिन एक मुनिराज क्षीण शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त इस नगरमें पधारे। उन्हें देखकर इस ब्राह्मणीने उनकी बहुत निंदा की और दुर्वचन कहकर ऊपर थूक दिया।

मुनि-निंदाके कारणसे इसको तिर्यंच आयुका बन्ध होगया और उसी जन्ममें उसको कोढ आदि अनेक व्याधियां भी उत्पन्न हो गईं, पश्चात् वह आयुके अन्तमें कष्टसे मरकर भैंस हुई, फिर मरकर सूकरी हुई, फिर कुत्ती हुई, फिर धीवरनी हुई। सो मछली मार मारकर आजीविका करती हुई जीवनकाल पूरा करने लगी।

एक दिन वटवृक्ष तले श्रीमुनि ध्यान लगाये तिष्ठे थे कि वह कुरूपा और दुष्ट-चित्ता धीवरी जाल लिए हुए वहां आई और मछली पकड़नेके लिए जाल नदीमें डाला। यह देखकर श्री गुरुने उसे इस दुष्ट कार्यसे रोका और उसके भवांतर सुनाकर कहा कि तू पूर्व पापके फलसे ऐसी दुःखी हुई है और अब भी जो पाप करेगी तो तेरी अत्यंत दुर्गति होगी। इस धीवरीको मुनि द्वारा अपने भवांतर सुनकर मूर्छा आगई। पश्चात् सचेत हो प्रार्थना करने लगी-हे नाथ! इस पापसे छूटनेका कोई उपाय हो तो बताइये।

तब श्री गुरुने दया करके सम्यग्दर्शन व श्रावकके पांच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह-प्रमाण) का उपदेश दिया। अष्ट मूलगुण (पंच उदम्बर और तीन मकारोंका त्याग करना) धारण कराये, इस प्रकार वह धीवरी श्रावकके व्रत ग्रहण करके आयुके अन्तमें समाधि मरणकर दक्षिण देशमें सुपारा नगरके नन्दश्रेष्ठिके यहां नन्दा सेठानीके लक्ष्मीमती नामकी कन्या हुई। सो यद्यपि वह कन्या रूपवान तो थी तथापि अशुभ आचरणके कारण सभी उसकी निन्दा करते थे।

एक समय उसी नगरके वनमें नन्द मुनि पधारे। सब लोग मुनिकी वन्दनाको गये। राजा आदि सभी जनोंने स्तुति वंदनाकर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् नन्द श्रेष्ठिने पूछा-हे प्रभो! यह मेरी कन्या उत्तम रूपवान होकर भी क्यों अशुभ लक्षणोंसे युक्त है जिससे सभी इसकी निंदा करते हैं।

तब श्री गुरुने कहा कि इसने पूर्वजन्ममें मुनिकी निन्दा की थी जिससे यह भैंस, सूकरी, कूकरी धीवरी आदि

हुई। धीवरीके भवमें मुनिके उपदेशसे पचाणुव्रत धारण करके सन्याससे मरी सो तेरे घर पुत्री हुई है। अभी इसके पूर्ण असाता कर्मका बिल्कुल क्षय न होनेसे ही ऐसी अवस्था हुई है सो यदि यह सम्यक्त्वपूर्वक निःशल्य अष्टमी व्रत पाले तो निःसंदेह इस पापसे छूट जावेगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है.—

भादो सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारोंका त्याग करके श्री जिनालयमें जाकर प्रत्येक पहरमें अभिषेक पूर्वक पूजन करे। त्रिकाल सामायिक और रात्रिको जिन भजन करते हुए जागरण करे। पश्चात् नवमीको अभिषेक पूर्वक पूजन करके अतिथियोंको भोजन कराकर आप पारणा करे। चार प्रकारके संघको औषधि, शास्त्र, अभय और आहारदान देवे। इस प्रकार यह व्रत सोलह वर्ष तक करके उद्यापन करे। सोलह सोलह उपकरण मंदिरमें भेंट चढ़ावे, अभिषेक पूर्वक विधान पूजन करे। कमसे कम सोलह श्रावकोंको मिष्टान्न भोजन प्रेमयुक्त हो करावे। दुःखित भुखितको करुणायुक्त दान देवे और चारों प्रकारके संघमें वात्सल्य भाव प्रगट करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत पाले।

इस प्रकार उस श्रेष्ठि कन्याने विधि सुनकर यह व्रत धारण किया और विधियुक्त पालन भी किया, श्रावकके बारह व्रत अंगीकार किये तथा सम्यग्दर्शन जो कि सब व्रतों और धर्मोंका मूल है, धारण किया। व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन किया और अन्त समयमें शीलश्री आर्यिकाके उपदेशसे चार प्रकारके आहारोंको त्याग, तथा आर्त रौद्र भावोंको छोड़कर समाधिमरण किया सो सोलहवें स्वर्गमें देवी हुई। वहांपर पचपन पल्य (५५) तक नानाप्रकारके सुख भोगे और आयु पूर्ण कर वहांसे चयी सो यह भीष्म राजाके यहां रुक्मिणि नामकी कन्या हुई है। अब अनुक्रमसे स्त्रीलिंग छेदकर परमपदको प्राप्त करेगी।

इस प्रकार रानी रुक्मिणि अपने भवांतर सुनकर संसार देह भोगोंसे विरक्त हो, सहर्ष राजमतीके निकट गई और दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगी। सो वह अंत समय सन्यास मरण कर स्वर्गमें देव हुई। वहांसे आकर मनुष्य भव ले मोक्ष जावेगी। इसप्रकार रुक्मिणिने व्रतके फलसे अपने पूर्वभवोंके समस्त पापोंको नाशकर उत्तम पद प्राप्त किया। और जो भव्यजीव श्रद्धा सहित इस व्रतको पालेंगे, वे इसी प्रकार उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

निःशल्याष्टमी व्रत थकी, रुक्मिमति त्रियसार। सकल पापको नाशकर, पायो सुख अधिकार॥

श्री सुगंधदशमी व्रत कथा।

वीतरागके पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वान। कथा सुगंध दशमी तनी, कहूं परम सुख दान॥

जम्बूद्वीपके विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें शिव मन्दिर नामका एक नगर है। वहांका राजा प्रियंकर और रानी मनोरमा थी सो ये अपने धन यौवन आदिके ऐश्वर्यमें मदोन्मत्त हुए जीवनके दिन पूरे करते थे। धर्म किसे कहते है, यह उन्हें मालूम ही न था।

एक समय सुगुप्त नामके मुनिराज कृश शरीर दिगम्बर मुद्रायुक्त आहारके निमित्त वस्तीमें आए सो उन्हें देखकर रानीने अत्यन्त घृणापूर्वक उनकी निन्दा की और पानकी पीक मुनिपर थूक दी। सो मुनि तो अन्तराय होनेके कारण बिना ही आहार लिये पीछे वनमें चले गए और कर्मोंकी विचित्रतापर विचार कर समभाव धारण कर ध्यानमें निमग्न होगये।

परन्तु थोड़े दिन पश्चात् रानी मरकर गधी हुई, फिर मरकर सूकरी हुई, फिर कूकरी हुई, फिर वहांसे मरकर मगध देशके वसंततिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी चित्रलेखाके दुर्गंधा नामकी कन्या हुई। सो उसके शरीरसे अत्यन्त दुर्गंध निकला करती थी।

एक समय राजा अपनी सभामें बैठा था कि वनपालने आकर समाचार दिया कि हे राजन्! आपके नगरके वनमें सागरसेन नामके मुनिराज चतुर्विधि संघ सहित पधारे हैं। यह समाचार सुनकर राजा प्रजा सहित वन्दनाको गया और भक्ति पूर्वक नत मस्तक हो राजाने स्तुति वन्दना की। पश्चात् मुनि तथा श्रावकके धर्मोंका उपदेश सुनकर सबने यथाशक्ति व्रतादिक लिये। किसीने केवल सम्यक्त्व ही अंगीकार किया। इस प्रकार उपदेश सुननेके अनन्तर राजाने नम्रतापूर्वक पूछा–हे मुनिराज! यह मेरी कन्या दुर्गंधा किस पापके उदयसे ऐसी हुई है सो कृपा कर कहिये। तब श्री गुरुने उसके पूर्व भवोंका समस्त वृत्तांत मुनिकी निंदादिका सब सुनाया, जिसको सुनकर राजा और कन्या सभीको पश्चात्ताप हुआ। निदान राजाने पूछा–प्रभो! इस पापसे छूटनेका कौनसा उपाय है? तब श्री गुरुने कहा—

समस्त धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है, सो अरहंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनभाषित धर्ममें श्रद्धा करके उनके सिवाय

अन्य रागीद्वेषी देव, भेषी गुरु, और हिंसामय धर्मको परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह प्रमाण इन पाच व्रतोको अंगीकार करे और सुगन्ध दशमीका व्रत पालन करे, जिससे अशुभ कर्मका क्षय होवे। इस व्रतकी विधि इसप्रकार है कि भादों सुदी दशमीके दिन चारो प्रकारके आहारको त्यागकर समस्त गृहारंभका त्याग करे और परिग्रहका भी प्रमाणकर जिनालयमे जाकर श्री जिनेन्द्रकी भाव सहित अभिषेकपूर्वक पूजा करे। सामायिक स्वाध्याय करे। धर्म कथाके सिवाय अन्य विकथाओका त्याग करे। रात्रिमे भजनपूर्वक जागरण करे। पश्चात् दूसरे दिन चोवीस तीर्थंकरोकी अभिषेक पूर्वक पूजा करके अतिथियो (मुनि व श्रावक) को भोजन कराकर आप पारणा करे। चारों प्रकारका दान देवे। इसप्रकार दश वर्ष तक यह व्रत पालनकर पश्चात् उद्यापन करे।

अर्थात् चमर, छत्र, घण्टा, झारी, ध्वजा आदि दश२ उपकरण जिन मंदिरोमे भेट देवे और दश२ प्रकारके श्रीफल आदि फल दश घर श्रावकोको बाटे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे, तो दूना व्रत करे।

उत्तम व्रत उपवास करनेसे, मध्यम काजी आहार और जघन्य एकासन करनेसे होता है।

इसप्रकार राजा प्रजा सबने व्रतकी विधि सुनकर अनुमोदना की और स्वस्थानको गये। दुर्गन्धा कन्याने मन, वचन, कायसे सम्यक्त्वपूर्वक व्रतको पालन किया। एक समय दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ भगवानके कल्याणकके समय देव तथा इन्द्रोका आगमन देखकर उस दुर्गन्धा कन्याने निदान किया कि मेरा जन्म स्वर्गमे होवे, सो निदानके प्रभावसे वह राजकन्या स्वर्गमे अप्सरा हुई और उसका पिता राजा मरकर दशवें स्वर्गमे देव हुआ। वह दुर्गन्धा राजकन्या अप्सराके भवसे आकर मगध देशके पृथ्वीतिलक नगरमे राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनावती नामकी कन्या हुई, सो अत्यन्त रूपवान और सुगन्धित शरीर हुई। और कोशाम्बी नगरीके राजा अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ इस मदनावतीका व्याह हुआ। इस प्रकार ये दम्पति सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक समय वनमे सुगुप्ताचार्य नामके आचार्य संघ सहित आये। सो वह राजकुमार पुरुषोत्तम अपनी स्त्री सहित वन्दनाको गया तथा और भी नगरके लोग वन्दनाको गये, सो स्तुति नमस्कार आदि करनेके अनन्तर श्री गुरुके मुखसे

जीवादि तत्वोंका उपदेश सुना। पश्चात् पुरुषोत्तमने पूछा–हे स्वामी! मेरी यह मदनावती स्त्री किस कारणसे ऐसी रूपवान
और अति सुगन्धित शरीरी है? तब श्री गुरुने मदनावतीके पूर्व भवान्तर कहे और सुगन्धदशमीके व्रतका माहात्म्य बताया
सो पुरुषोत्तम और मदनावती दोनो भवान्तरकी कथा सुनकर संसार देहभोगोंसे विरक्त हो, दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगे।
इसप्रकार तपश्चरणके प्रभावसे मदनावती स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहां बाईस सागर सुखसे आयु पूर्ण करके
अंत समय चयकर मगध देशके वसुंधरा नगरीमें मकरकेतु राजाके यहां देवी पट्टरानीके कनककेतु नामका सुन्दर गुणवान
पुत्र हुआ। पिताके दीक्षा ले जाने पर कितक काल राज्य करके वह भी अपने पुत्र मकरध्वजको राज्य दे दीक्षा लेकर तप
श्चरण करके और देश विदेशोंमें विहार करके अनेक जीवोंको धर्मके मार्गमें लगाने लगे। इस प्रकार कितनेक कालमें कनककेतु
मुनिनाथको केवलज्ञान हुआ और बहुत कालतक उपदेशरूपी अमृतकी वृष्टि करके शेष अघाति कर्मोंको नाश कर परमपद
मोक्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार सुगंध दशमीका व्रत पालकर दुर्गन्धा भी अनुक्रमसे मोक्षको प्राप्त हुई तो और भव्यजीव यदि
व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावें।

सुगन्ध दशमी व्रत कियो, दुर्गन्धा सार। सुरनरके सुख भोगके, अनुक्रम भई भवपार॥

श्री जिनरात्रि व्रत कथा।

वंदूं ऋषभ जिनेन्द्र पद, माथ नाय हित हेत। कथा कहूं जिनरात्रि व्रत, अजर अमर पद देत॥

जब तीसरे कालका अन्त आया, तब क्रमसे कर्मभूमि प्रगट हुई और कल्पवृक्ष भी मंद पड़ गये, ऐसे समयमें भोग-
भूमिके भोले जीव भूख प्यास आदि अनेक प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित होने लगे। तब कर्मभूमिकी रीतियें बतानेवाले १४
कुलकर (मनु) उत्पन्न हुए। उन्हींमसे १४ वें मनु श्री नाभिराजा हुए। नाभिराजाके मरुदेवी नाम शुभलक्षणा रानी थी।
इनके पूर्व पुण्योदयसे तीर्थंकर पदधारी पुत्र ऋषभनाथका जन्म हुआ। ये ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे, इसीसे इन्हें आदि-
नाथ भी कहते हैं।

आदिनाथने नन्दा सुनन्दा नामकी दो स्त्रियोंसे व्याह किया और उनसे भरत, बाहुबलि आदि १०० पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी दो कन्याएँ हुईं। सो कन्याएँ कुमार काल ही में दीक्षा लेकर तप करने लगीं। इस प्रकार ऋषभदेवने बहुत काल तक राज्य किया। जब आयुका केवल चौरासीवां भाग अर्थात् १ लाख पूर्व शेष रहा गया, तब इन्द्रने प्रभुको वैराग्यका निमित्त लगाया। अर्थात् एक नीलांजना नामकी अप्सरा जिसकी आयु अल्प समय (कुछ मिनटों ही) की रह गई थी, प्रभुके सन्मुख नृत्य करनेको भेज दी। सो नृत्य करते करते वह अप्सरा वहांसे विलुप्त हो गई और उसी क्षण, उसी पलमें दूसरी वैसी ही अप्सरा आकर नृत्य करने लगी। इस बातको सिवाय प्रभुके और सभाजन कोई भी जान न सके, परन्तु प्रभु तो तीन ज्ञान संयुक्त थे सो तुरन्त ही उन्होंने जान लिया।

आप संसारको क्षणभंगुर जानकर द्वादशानुप्रेक्षाओंका चिंतन करने लगे। इसी समय लौकांतिक देव आए, और प्रभुके वैराग्य भावोंकी सराहना करके उनके वैराग्यमें स्तुतिपूर्वक दृढ़ करके चले गये। पश्चात् इन्द्रादि देवों व नरेन्द्रोंने उत्साहपूर्वक तप कल्याणकका समारोह किया। भगवान् ऋषभनाथने सिद्धोंको नमस्कार करके स्वयं दीक्षा ली और भक्तिवश उनके संग ४००० राजाओंने भी देखादेखी दीक्षा ले ली। सो दुर्द्धर तप करनेको असमर्थ होकर नाना प्रकारके भेष धारण कर ३६३ पाखंडमत चला दिए। इन दीक्षा लेनेवालोंमें भरतजीका पुत्र मारीच भी था। सो जब केवलज्ञान हुआ और भरतजी उस समय वन्दनाको चले गये और वन्दना करके मनुष्योंके कोठे (सभा) में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर भरतजीने पूछा—हे ऋषिनाथ ! हमारे वंशमें और भी कोई आपके जैसा धर्मोपदेश प्रवर्तक अथवा चक्रवर्ती होगा ? तब प्रभुने कहा कि मारीचका जीव नारायण होकर फिर तीर्थंकर भी होगा। मारीच समवशरणमें ही बैठा था, सो यह बात सुनकर हर्षोन्मत्त हो दीक्षा त्याग करके वह अनेक प्रकारके पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होगया, और पश्चात् तप कर अन्त समय प्राण छोड़कर पांचवें स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे मिथ्यात्व अवस्थामें प्राण छोड़कर अनेक त्रस स्थावर योनियोंमें जन्म मरण करनेके अनन्तर राजगृही नगरीके राजा विश्वभूतिकी रानी जयन्तीके विश्वनन्दि नामका पुत्र हुआ। एक समय विश्वभूति राजा कोई निमित्त पाकर वैराग्यको प्राप्त होगये और अपने पुत्रको बालक जानकर अपने लघु भ्राता विशाखभूतिको राज्य

और अपने पुत्र विश्वनन्दिको युवराजपद देकर आप दीक्षा लेकर तप करने लगे। युवराज विश्वनन्दिने अपने मनोरंजनार्थ एक बाग तैयार कराया, सो नित्यप्रति अपना चित्त रंजन किया करता था।

वर्तमान राजा विशाखनन्दिने बाग देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया। और इससे उसको विश्वनन्दि पर द्वेषबुद्धि उत्पन्न होगई। इसलिये उसने विश्वनन्दिको किसी प्रकार देशसे निकाल देनेका दृढ निश्चय कर लिया और उसने युवराजको आज्ञा दी, कि तुम अमुक अमुक देश पर्यटन करनेके लिये जाओ। युवराज विश्वनन्दि राजाज्ञासे देश पर्यटनको गया, और उनकी क्रीडा करनेका जो बाग था सो राजाने स्वपुत्रको देदिया। कितनेक काल बाद जब युवराज देश घूमकर लौटा तो अपनी क्रीडा करनेका बाग अपने काकाके पुत्रके हाथोंमें गया जानकर कुपित हो उसे मारनेके लिए चला। सो वह विशाखभूतिका पुत्र भयके मारे वृक्षपर चढ गया। विश्वनन्दिने उस वृक्षको ही उखाड दिया। यह देखकर वह राजपुत्र युवराजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर क्षमा मांगने लगा। युवराजने अपने भाईको क्षमा करके उठाया, और आप संसारको असार जानकर काका सहित दीक्षा ले गया। काका विशाखभूति बारह प्रकार दुर्द्धर तप करके दशवें स्वर्गमें देव हुआ।

युवराज विश्वनन्दि अनेक प्रकारके दुर्द्धर तप करते हुए मासोपवासके अनन्तर भिक्षाके अर्थ नगरमें पधारे, सो किसी पशुने उन्हें अपने सींगोंसे प्रहार कर भूमिपर गिरा दिया। इससमय राजा विशाखनन्दि अपने महलोंमें बैठा यह सब बात देख रहा था सो अविचारी, मुनिका उपहास करके कहने लगा कि वह सब बल अब कहां गया? इत्यादि। मुनिराज विशाखनन्दि राजाके वचन सुनकर और अन्तराय जानके वनमें चले गये और उन्होंने निदान करके आयुके अन्तमें प्राण छोडकर दशवें स्वर्गमें देवपद प्राप्त किया।

कुछ काल बाद विशाखनन्दि भी दीक्षा ले, तप कर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। सो ये दोनो देव देवोचित सुख भोगने लगे और अन्त समय वहांसे चयकर विशाखभूतिका जीव, सौरम्यदेश पोदनपुर नगरीके प्रजापति राजाकी रानी जयावतीके बलभद्र पदधारी पुत्र हुआ और उसी राजाकी मृगावती रानीके गर्भसे विश्वनन्दिका जीव दशवें स्वर्गसे चयकर त्रिपृष्ठ नामका नारायण पदधारी पुत्र हुआ। सो रथनूपुरका राजा ज्वलनजटीकी प्रभावती नामकी कन्याके साथ नारायणका ब्याह

हुआ। सो विशालनदिका और जो विजयार्द्ध गिरिका राजा अश्वग्रीव प्रतिनारायण हुआ था, उक्त व्याहका समाचार सुनकर बहुत कुपित हुआ और बोला कि क्या ज्वलनजटीकी कन्या त्रिपृष्ठ जैसा रंक व्याह सकता है ? चलो, इस दुष्टको इसकी इस धृष्टताका फल चखावें। यह विचारकर तुरन्त ही ससैन्य त्रिपृष्ठ राजा (जो कि होनहार नारायण थे) पर जा चढ़ा और घोर संग्राम आरम्भ कर दिया जिससे पृथ्वीपर हाहाकार मच गया परन्तु अन्यायका फल कभी अच्छा नहीं हुआ न होगा।

अन्तमें त्रिपृष्ठ नारायणकी ही विजय हुई और अश्वग्रीव अपने कियेका फल पाकर विशेष दुःख भोगनेको नर्कमें चला गया। क्या कोई किसीकी माग या विवाहित स्त्रीको लेसकता है या लेकर सुखी होसकता है ? देखो परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे अश्वग्रीव प्रतिहर त्रिपृष्ठ द्वारा हता गया और त्रिपृष्ठको नारायण पदका उदय हुआ सो सम्पूर्ण तीन खण्ड, बिना ही प्रयास त्रिपृष्ठके हाथ आगये। यथार्थ है, पुण्यसे क्या नहीं होसक्ता है ?

इसप्रकार कितनेक कालतक त्रिपृष्ठ नारायणने संसारके विविध प्रकार सुख भोगे। और अन्त समय रौद्रध्यानसे मरण कर सातवें नर्क गया। वहां ३३ सागरतक घोर दुःख भोगकर निकला, सो सिंह हुआ। वहां अनेक जीवोंको मार मारकर खाया, जिससे घोर हिंसाके कारण मरकर पुनः प्रथम नरकमें गया। वहांसे निकलकर पुनः सिंह हुआ। सो चारण मुनि अमितकीर्तिने उसे धर्मोपदेश देकर सम्बोधन किया। उस समय मुनिकी शांतमुद्रा और सरल उपदेशका उस सिंहपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने हिंसा त्याग दी और अनशन व्रत धारण करके फाल्गुन वदी चतुर्दशीको प्राण त्यागकर प्रथम स्वर्गमें हरिध्वज नामका देव हुआ। वह देव पुण्यके प्रभावसे अनेक प्रकारके सुख भोगता और निरन्तर धर्मसेवन करता हुआ वहांसे चयकर धातकीखण्ड द्वीपके सुमेरुगिरिकी पूर्व दिशामें सीता नदीके किनारे उत्तर दिशामें जो वक्षावती देश है उस देशकी हेमप्रभ नगरीमें कनकप्रभु नाम राजाकी कनकमाला पट्टरानीके गर्भसे हेमध्वज नामका पुत्र हुआ। यह हेमध्वज राजा एक समय अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दनाको गया था सो वहां एक अकृत्रिम जिन चैत्यालयमें श्री सुव्रत नामके मुनिराजका दर्शन होगया। यह उनकी वन्दना स्तुतिकर धर्म श्रवण करनेके अनन्तर अपने भवान्तर पूछने लगा।

तब श्रीगुरुने कहा कि तू इससे तीसरे भवमें सिंह था सो मुनिके उपदेशसे हिंसा त्याग कर जिनरात्रि व्रत धारण

किया और अनशन तपके प्रभावसे प्रथम स्वर्गमे देव हुआ । अब वहासे चयकर तू हेमध्वज नामका राजा हुआ । यह सुन कर राजाने व्रतकी विधि पूछी । तब श्रीगुरुने बताया कि फागुन वदी १४ (गुजराती माह वदी १४) को उपवास करे, श्री जिनालयम जावे और पचामृत अभिषेकपूर्वक अष्टद्रव्यसे भगवानकी त्रिकाल पूजन सामायिक और स्वाध्याय करे । रात्रिको भी धर्मध्यान पूर्वक मौन व जागरण करे । दूसरे दिन अतिथिको भोजन कराकर आप भोजन करे, सुपात्रोंको चार प्रकारका दान देवे । इस प्रकार १४ वर्ष यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करे ।

अतीत, अनागत और वर्तमान चौवीसीका विधान (पाठ) रचावे । चौदह महान् ग्रथ (शास्त्र) मदिरोम पधरावे तथा अन्य उपकरण सब चौदहर मदिरोम भेंट करे । कमसे कम चौदह श्रावक और चौदह श्राविकाओको श्रद्धा व भक्ति पूर्वक सादर मिष्टान्नादि भोजन करावे । नवीन वस्त्र पहिरावे । कुमकुमका तिलक कर उनका भले प्रकार सन्मान करे । चौदह त्रिनौरा देवे । चतुर्विध दानशालाए खोले इत्यादि उत्सव करे और जो शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे । इस प्रकार राजा हेमध्वजने व्रतकी विधि सुनकर भक्ति भावसे व्रत धारण किया और उसे यथाविधि पालन भी किया । फिर अन्त समयम जिन दीक्षा लेकर बारह प्रकारके तप करते हुए आयु पूर्ण कर आठवें स्वर्गम देव हुआ ।

वहासे चयकर अवन्ती देशकी उज्जैन नगरीम वज्रसेन राजाकी सुशीला रानीके हरिषेण नामका पुत्र हुआ । सो योग्य वय होनेपर पचाणुव्रत पालन करते हुए कितनेक कालतक राज्य किया । पश्चात् दीक्षा ले उग्र तप कर सन्यास पूर्वक प्राण त्यागकर दशवें स्वर्गम देव हुआ । वहासे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह कुमावती देशकी क्षेमपुरी नगरीमे धनजय राजाकी प्रभावती पट्टरानीसे प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ । सो पुण्य फलसे चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो षट् खण्डका राज्य कर अनेक सुख भोगे । पुन शिवरात्रि व्रत किया और अन्त समय क्षेमकरस्वामीके निकट दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप किया । सो अन्तम आयु पूर्ण कर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभु देव हुआ । वहासे चयकर भरतक्षेत्रके श्वेतछत्रपुर नगरके राजा नन्दिवर्द्धनकी वीरमती रानीके श्रीनन्दन नामका पुत्र हुआ, सो प्रियकरा नाम राजकन्यासे ब्याहकर सानन्द रहने लगा । पुन॰ जिनरात्रि व्रत किया और कितनेक काल राज्य कर अन्तमे पुत्रको राज्य देकर आपने महाव्रत धारण किया और सोलह

कारण भावना भाई, जिससे तीर्थंकर नाम कर्मप्रकृतिका बन्ध कर प्राण त्याग सोलहवें पुष्पोत्तर विमानमें देव हुआ।

फिर वहांसे चयकर भरतक्षेत्रके आर्यखण्ड मगध देशकी कुन्डलपुर नगरीके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके पंचकल्याणकोंके धारी श्री वर्द्धमान नामके चौबीसवें तीर्थंकर हुए। प्रभुका जन्म चैत्र सुदी त्रयोदशीको हुआ था। आपने कुमार अवस्थामें ही मार्गशीर्ष वदी दशमीको दीक्षा धारण कर ली और बारह वर्षके घोर तपश्चरण करनेके अनन्तर वैशाख सुदी १० को केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहारकर धर्मोपदेश दे भव्य जीवोंको कल्याणका उपदेश दिया। पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्याको प्रात काल पावापुरीके वनसे शेष अघाति कर्मोंको भी नाश करके परम पद (मोक्षको) प्राप्त किया। इसप्रकार इस व्रतके प्रभावसे सिंह भी अनेक उत्तम भव लेकर अन्तिम तीर्थंकर हो लोकपूज्य सिद्धपदको प्राप्त हुआ, सो यदि अन्य भव्य जीव भाव सहित पालन करें तो अवश्य ही उत्तम फलको प्राप्त होवें।

पालन कर जिनरात्रि व्रत, सिंह महा दुठ जीव। अनुक्रम तीर्थंकर भयो, पायो मोक्ष सदीव॥

श्री जिनगुणसम्पत्ति व्रत कथा।

वन्दूं आदि जिनद्रपद, मन वच शीश नवाय। जिनगुण सम्पत्ति व्रत कथा, कहूं भव्य सुखदाय॥

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरु सम्बन्धी अपर विदेह क्षेत्रमें गान्धिल देश और पाटलीपुर नामका नगर है। वहां नागदत्त नामका एक सेठ और उसकी सुमति नामकी सेठानी रहती थी सो निर्धन होनेके कारण अत्यन्त पीड़ित–चित्त रहते और वनसे लकड़ीका भारा लाकर बेचते थे। इसप्रकार उदरपूर्ति करते थे। एक दिन वह सुमति सेठानी भूख–प्यासकी वेदनासे व्याकुल होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठी थी—

कि इतने हीमें क्या देखती है कि बहुतसे नरनारी अष्ट प्रकारकी पूजनकी द्रव्य लिये हुए बड़े उत्साहसे हर्ष सहित कहीं जारहे हैं। तब सुमतिने साश्चर्य उन आगन्तुकोंसे पूछा–क्यों! भाई आप लोग कहां जारहे हैं और यह काहेका उत्सव

पधारे हैं। हम लोग सब उन्हींकी वन्दनाके
! तब उत्तर मिला कि अम्बरतिलक पर्वतपर पिहिताश्रव नामके केवली भगवान पधारे हैं। हम लोग सब उन्हींकी वन्दनाके
लिये जाते है और यह अष्ट प्रकारकी द्रव्य पूजार्थ लिये जाते हैं। सुमति सेठानी यह शुभ समाचार सुनकर सहर्ष सब
लोगोंके साथ ही साथ प्रभुकी वन्दनाके निमित्त चल दी।

इसप्रकार जब सब लोग पिहिताश्रव स्वामीके निकट पहुचे तो मन वचन कायसे भक्तिपूर्वक भगवानकी वन्दना पूजा
की, और फिर एकाग्र चित्तकर धर्मोपदेश सुननेके लिये बैठ गये।

स्वामीने देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, सयम, तप और दान इन गृहस्थके षट् कर्मोंका उपदेश किया। पश्चात् अहिंसा,
सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (स्वदारसन्तोष) और परिग्रहप्रमाण इन पचाणुव्रतों तथा इनके रक्षक ४ शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत
इन सात शीलोंका, ऐसे बारह व्रतोंका उपदेश किया और सबसे प्रथम कर्तव्य सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझाया।

इसप्रकार उपदेश सुनकर नरनारी अपने २ स्थानको पीछे लौटे। तब सुमति सेठानी जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीडित
थी, अवसर पाकर श्री भगवानसे अपने दु खकी वार्ता कहने लगी—हे स्वामी ! हे दीनब धु, दयासागर भगवान् ! मै अवला
दरिद्रतासे पीडित होकर नितात व्याकुल हुई कष्ट पा रही हू। कौन कारणसे सपत्ति (लक्ष्मी) मुझसे दूर रहती है और वह
कैसे मुझे मिले, कि जिससे मेरा दु ख दूर होकर मेरी प्रवृत्ति भी दान पूजादि रूप हो। किसी कविने ठीक ही कहा है कि
" भूखे पेट भक्ति नहीं होय, धर्माधर्म न सूझे कोय। " इसी कहावतके अनुसार जब सब लोग धर्मोपदेश सुन रहे थे, तब
वह दरिद्रा सुमती सेठानी अपने दारिद्र्य रूपी तत्त्वके विचारमें ही निमग्न थी, जो कि अवसर मिलते ही झटसे कह सुनाया।

स्वामीने जिनकी दृष्टिमें राजा और रक समान हैं, उस सेठानीके चित्तको शीतल और प्रसन्न करनेवाले शब्दोंमे
इस प्रकार समझाया—

ऐ बेटी सुमति ! सुन ! पलासकूट नामक नगरमें दिनिलद नामक ग्रामपति रहता था। उसकी भार्या सुमती और
पुत्री धनश्री रूप यौवनसपन्ना थी। एक समय धनश्री पाच सात सखियोंको लेकर वनक्रीडाके लिए नगरके उद्यानमें गई,
जहापर एक वृक्षके नीचे समाधिगुप्त नामके मुनिराज ध्यान कर रहे थे। सो यह मदोन्मत्त धनश्री मुनिराजको देखकर निन्दा

युक्त वचन कहने लगी और घृणाकर श्री मुनिराजके ऊपर कुचे छोड दिये, इससे मुनिराजको महा उपसर्ग हुआ, परन्तु वे धीरवीर जिनगुरु अपने ध्यानसे किंचित्मात्र भी च्युत न हुए।

परन्तु इस महापापके कारण वह धनश्री मरकर सिंहनी हुई और सिंहनी मरकर तू धनहीन दरिद्रा नारी उत्पन्न हुई है। सो जो कोई मूढ नरनारी श्रीगुरुको उपसर्ग करते हैं, वे ऐसी ही तथा इससे भी नीच गतिको प्राप्त होते हैं।

सुमति सेठानी अपने पूर्व भवांतर सुनकर बहुत दु खी हुई और पश्चात्ताप करके रोने लगी। पश्चात् कुछ धैर्य धरकर हाथ जोड़के पूछने लगी-हे स्वामी! मेरा यह महापाप किसप्रकार छूटेगा?

तब भगवानने कहा कि जो तू सम्यग्दर्शनपूर्वक जिनगुण सम्पत्ति व्रत पालन करे तो तेरा दु ख दूर होकर मनवांछित कार्य सिद्ध होगा।

इस व्रतकी विधि इसप्रकार है कि प्रथम ही सोलहकारण भावनाएं जो तीर्थंकर प्रकृतिके आश्रवका कारण है, उनके १६, पञ्च परमेष्ठीके पांच, अष्ट प्रातिहार्यके ८ और ३४ अतिशयोंके ३४ इसप्रकार कुल ६३ उपवास या प्रोषध करे। और इन उपवासके दिनोंमे समस्त गृहारम्भको त्यागकर श्री जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक और पूजन विधान करे। दिनमे तीनबार सामायिक या स्वाध्याय करे और उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। उद्यापनकी विधि निम्नप्रकार है —आम, जाम, केला, नारंगी, बिजौरा, श्रीफल, अखरोट, खारक, बादाम, द्राक्ष इत्यादि प्रत्येक प्रकारके ६३ त्रेसठ फल और भांति भांतिके उत्तम पकान्नो सहित अष्ट द्रव्यसे भगवानकी महाभिषेकपूर्वक पूजन करे और जिनालयमे चन्दोवा, चमर, छत्र, झालर, घण्टादि उपकरण भेट करे तथा त्रेसठ ६३ ग्रंथ लिखाकर श्रावक श्राविकाओंमे ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेके लिये बांटे व जिनालयके सरस्वती भण्डारोमे ग्रंथ पधरावे, खूब उत्सव करे, अतिथियोंको भोजन देवे व दीन दु खीका यथासंभव दुख दूर करे इत्यादि।

सुमति सेठानी इसप्रकार व्रतकी विधि सुनकर घर आई और श्रद्धा सहित व्रत पालन करके शक्ति अनुसार उद्यापन भी किया, सो आयुके अन्तमे सन्यास मरणकरके दूसरे स्वर्गमे ललितांग देवकी पटरानी देवी हुई। पुण्यके प्रभावसे वह स्वयंप्रभादेवी नानाप्रकारके सुखोको भोगती हुई। पश्चात् आयु पूर्ण कर वहांसे चयकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकनी नगरीमे वज्रदन्त चक्रवर्तिके लक्ष्मीमती नामकी रानीके गर्भसे श्रीमती नामकी पुत्री हुई, सो वज्रजंघ राजाके साथ व्याही

गई। एक दिन ये दम्पति वनक्रीडाको गये थे, सो वहा सर्पसरोवरके तटपर आये हुए चारण मुनिको आहारदान दिया और मुनिदानके प्रभावसे ये दम्पति भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। फिर वहासे चयकर श्रीमतीके जीवने जम्बूद्वीपमें अवतार लेकर आर्यिकाके व्रत धारण किये और सन्यास पूर्वक मरण कर स्त्रीलिंग छेद दूसरे स्वर्गमें देव हुआ। फिर वहासे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह वत्सकावती देशकी सुसीमा नगरीमें सुदृष्टि नाम राजाकी मनोरमा रानीके केशव नाम पुत्र हुआ, सो उसने बहुत काल तक अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्यसुख न्याय नीतिपूर्वक भोगे। पश्चात् कारण पाय वैराग्यको प्राप्त हुआ और सीमन्धर स्वामीके निकट जिन दीक्षा धारण करके दुर्द्धर तपश्चरण किया। सो उसके प्रभावसे सन्यास मरणकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ।

वहासे बाईस सागरकी आयु सुखसे पूर्ण करके चया सो जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकणी नगरीमें कुबेरदत्त सेठकी अनन्तमती सेठानीके धनदेव नामका पुत्र (चक्रवर्तीका भण्डारी) हुआ। एक दिन वह धनदेव चक्रवर्तीके साथ मुनिराजकी वन्दनाको गया, सो स्वामीका उपदेश सुनकर उसने वैराग्यको प्राप्त होकर जिनदीक्षा धारण की और तप करके सन्यास मरणकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ।

फिर वहासे चयकर भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशकी हस्तिनागपुर नगरीमें श्रेयांस नामका राजा हुआ, सो कितनेक काल राज्यसुख भोगे। पश्चात् श्री ऋषभदेव भगवानको आहारदान दिया, जिसके कारण दानियोंमें प्रसिद्ध प्रथम दानवीर कहलाया, जिसकी कथा आजतक प्रख्यात है और लोग उस दानके दिन (वैसाख सुदी ३) को अक्षय तृतीया या अखातीज कहते और उत्सव मनाते हैं, क्योंकि सबसे प्रथम दानकी प्रथा इन्हींके द्वारा प्रचलित हुई है।

पश्चात् ये प्रसिद्ध दानी राजा श्रेयांस भगवान ऋषभदेवके मुखसे धर्मोपदेश सुनकर जिन दीक्षा लेकर तप करने लगे और आपने शुक्लध्यानके प्रभावसे केवलज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार सुमति नामकी दरिद्रा सेठानीने जिनगुणसम्पत्ति व्रत सम्यग्दर्शन सहित पालनकर अनुक्रमसे मोक्षपद प्राप्त किया तो और भव्य जीव यदि पालें तो क्यों नहीं उत्तम फल पावेंगे? अवश्य ही पावेंगे।

जिनगुण सम्पत्ति व्रत करो, सुमति वणिक वर नार। नर सुरके सुख भोगकर, फेर हुई भवपार॥

श्री मेघमाला व्रत कथा।

महावीर पद प्रणमि कर गोतम गुरु सिर नाय। कथा मेघमाला तनी, कहूं सबहिं सुखदाय॥

वत्स देश कौशाम्बीपुरीमें जब राजा भूपाल राज्य करते थे तब वहापर एक वत्सराज नामका श्रेष्ठी (सेठ) और उसकी सेठानी पद्मश्री नामकी रहती थी। सो पूर्वकृत अशुभ कर्मके उदयसे उस सेठके घरमें दरिद्रताका वास रहा करता था। इसपर भी इसके सोलह (१६) पुत्र और बारह (१२) कन्याएं थीं।

गरीबीकी अवस्थामें इतने बालकोंका लालन पालन करना और गृहस्थीका खर्च चलाना कैसा कठिन होजाता है, इसका अनुभव उन्हींको होता है जिन्हें कभी ऐसा प्रसङ्ग आया हो या जिन्होंने अपने आसपास रहनेवाले दीन दुःखियोंकी ओर कभी अपनी दृष्टि डाली हो। परम स्नेह करनेवाले माता पिता ही ऐसे समयमें अपने प्यारे बालकोंको अनुचित और कठोर शब्दोंमें केवल सम्बोधन ही नहीं करने लगते हैं किन्तु उन्हें बिना मूल्य या मूल्यमें बेच तक देते हैं। प्राणोंसे प्यारी सन्तान कि जिसके लिये संसारके अनेकानेक मनुष्य लालायित रहते हैं और अनेक यन्त्र मन्त्रादि कराया करते हैं, हाय! उस दरिद्रावस्थामें वह भी भाररूप हो पड़ती है। वत्सराज सेठ निरन्तर इसी चिंतामें चिंतित रहता। जब वे बालक क्षुधातुर होकर मातासे भोजन मांगते तो माता कठोरतासे कह देती—जाओ मरो, लंघनें करो, चाहे भीख मांगो, तुम्हारे लिये मैं कहांसे भोजन दूं? यहां क्या रखा है जो दे दूं! सो वे नन्हें २ बालक झिड़की खाकर जब पिताके पास आते, तब वहांसे भी निराशा ही पल्ले पड़ती। हाय! उस समयका करुणाक्रन्दन किसके हृदयको विदीर्ण नहीं कर देता है?

एक दिन भाग्योदयसे एक चारण ऋद्धिधारी मुनि वहां आये। उन्हें देखकर वत्सराज सेठने भक्ति सहित पड़गाहा और घरमें जो रूखा सूखा भोजन शुद्धतासे तयार किया गया था, सो भक्ति सहित मुनिराजको दिया।

मुनिराज उस भक्तिपूर्वक दिये हुए स्वाद रहित भोजनको लेकर वनकी ओर विहार गये। तत्पश्चात् सेठ भी भोजन करके जहां श्री मुनिराज पधारे, वहां खोजते खोजते पहुँचा और भक्तिपूर्वक वन्दना करके बैठा। श्री गुरुने इसे सम्यक्त्वादि धर्मका उपदेश दिया।

पश्चात् सेठने पूछा–हे दयानिधि ! मेरे दरिद्रता होनेका कारण क्या है ? और अब यह कैसे दूर हो सकती है ?

तब श्रीगुरु बोले–हे वत्स सुनो ! कौशल देशकी अयोध्या नगरीमें देवदत्त नामके सेठकी देवदत्ता नामकी सेठानी रहती थी । वह धन कण और रूप लावण्य कर संयुक्त तो थी, परन्तु कृपण होनेके कारण दान धर्ममें धन लगाना तो दूर ही रहे किन्तु वह उल्टा दूसरका धन हरण करनेको तत्पर रहती थी ।

एक दिन कहींसे एक गृहत्यागी ब्रह्मचारी जो अत्यन्त क्षीण–शरीरी था सो भोजनके निमित्त उसके घर आगया । उसे देख सेठानीने अनेक दुर्वचन कहकर निकाल दिया । वह कृपणा कहने लगी–अरे जा जा यहांसे निकल, यहां तो घरके बच्चे भूखों मर रहे हैं, फिर दान कहांसे करें ? जो चाहे सो यहां ही चला आता है । इतने हीमें उसका स्वामी सेठ भी आगया और उसने भी अपनी स्त्रीकी हां हां मिलादी । निदान कुछेक दिनोंमें वही हुआ–जैसी मनसा वैसी दशा हो गई । अर्थात् उनका सब धन चला गया और वे यथार्थमें भूखों मरने लगे। अति तीव्र पापका फल कभी २ प्रत्यक्ष भी दीख जाता है।

वे सेठ सेठानी आर्तध्यानसे मर सो एक ब्राह्मणके घर महिष (भैंस) के पुत्र (पाड़ा–पाड़ी) हुए। सो वहां भी भूख–प्यासकी वेदनासे पीड़ित हो पानी पीनेके लिये एक सरोवरमें घुसे थे कि कीच (कादा) में फंस गये और जब तड़फड़ा कर मरणोन्मुख हो रहे थे उसी समय किसी दयालु श्रावकने आकर उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया और मिष्ट शब्दोंमें संबोधन किया ।

सो वे पाड़ा–पाड़ी वहांसे मरकर णमोकार मंत्रके प्रभावसे तुम मनुष्य भवको प्राप्त तो हुए, परन्तु पूर्व संचित पाप कर्मोंका शेषांश रह जानेसे अबतक दरिद्रताने तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ा है ।

हे वत्स ! यह दान न देने और यति आदि महात्माओंसे घृणा करनेका फल है । इसलिये प्रत्येक गृहस्थको सदैव यथाशक्ति दान धर्ममें अवश्य ही प्रवर्तना चाहिये ।

अब तुम सत्यार्थ देव अर्हंत, गुरु निर्ग्रन्थ और दयामयी धर्ममें श्रद्धान करो और श्रद्धापूर्वक मेघमाला व्रतको पालन करो तो सब प्रकार इस लोक और परलोक सम्बन्धी सुखोंको प्राप्त होओगे ।

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन सुदी प्रतिपदा तक प्रति वर्ष एक एक मास करके पांच वर्ष तक

किया जाता है अर्थात् भादों सुदी पडिमासे आसोज सुदी पडिमा तक (एक मास) श्री जिनालयके आगण (चौकमे) सिंहासनादि स्थापन कर और उसपर श्री जिनबिंब स्थापन करके महाभिषेक और पूजन नित्य प्रति करे, श्वेत वस्त्र पहिरे, श्वेत ही चन्दोवा बन्धावे, मेघधाराके समान १००८ कलशोंसे महाभिषेक करके पश्चात् पूजा करे। पाच परमेष्ठीका १०८ वार जाप करे, पश्चात् सगीत पूर्वक जागरण भजन इत्यादि करे। भूमिशयन व ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे। यथाशक्ति चारो प्रकार दान देवे, हिंसादि पंच पापोंका त्याग करे तथा एक मास पर्यंत ब्रह्मचर्यपूर्वक (एकभुक्ति) उपवास, बेला, तेला आदि शक्ति-प्रमाण करे। निरन्तर षट्रसीव्रत पाले अर्थात् नित्य एक रस छोडकर भोजन करे। इस प्रकार जब पाच वर्ष पूर्ण होजावे तब शक्ति प्रमाण भाव सहित उद्यापन करे अर्थात् पाच जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा करावे, पाच महान् ग्रंथ लिखावे, पाच प्रकारका पक्वान्न बनाकर श्रावकोंके पाच घर देवे। पाच र घण्टा, झालर चन्दोवा, चमर, छत्र, अछार आदि उपकरण देवे। पाच श्रावकों द्यार्थियो) को भोजन करावे, सरस्वतीभवन बनावे, पाठशाला चलावे इत्यादि और अनेकों प्रभावना बढानेवाले कार्य करे।

इसप्रकार व्रतकी विधि सुनकर सेठ सेठानीने श्रद्धापूर्वक इस व्रतको पालन किया, सो व्रतके प्रभावसे उनका सब य दूर होगया और वे स्त्री-पुरुष सुखसे काल व्यतीत करते हुए आयुके अन्तमें सन्यासपूर्वक मरण कर दूसरे स्वर्गमे देव हुए। फिर वहासे चयकर वे पोदनपुरमे विजयभद्र नामके राजा और विजयावती नामकी रानी हुए, सो पूर्व पुण्यके प्रभावसे धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादि संपत्तिके अधिकारी हुए। आयुके अन्तिम भाग (वृद्धावस्था) मे दोनो राजा और रानी अपने पुत्रको राज्यका अधिकार देकर आप जिनेश्वरी दीक्षा ले, तप करने लगे, सो तपके प्रभावसे आयु पूर्णकर राजा तो सर्वार्थसिद्धि विमानमे अहमिंद्र हुआ और रानी भी स्त्रीलिंग छेदकर सोलहवें स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुई। वहासे चयकर ये दोनों प्राणी मोक्षका पद प्राप्त करेंगे।

इसप्रकार मेघमाला व्रतके प्रभावसे देवदत्त और देवदत्ता नामके कृपण सेठ और सेठानी भी मोक्षपद पावेंगे सो यदि और नरनारी श्रद्धा सहित व्रत पालें तो अवश्य ही उत्तम फल पावें।

मेघमाला व्रत धारकर, सेठ सेठानी सार। लहो स्वर्ग अरु लहेंगे, मोक्षसुख अधिकार॥

श्री लब्धिविधान व्रत कथा।

प्रथम नमूं जिन वीर पद, पुनि गुरु गौतम राय। लब्धि विधान कथा कहूं, शारद होहु सहाय ॥

काशी देशमें वाराणसी नामकी नगरीका महाप्रतापी विश्वसेन राजा था। उसकी रानीका नाम विशालनयना था। एक दिन राजाने कौतुकपूर्ण हृदयसे नाटकका खेल करवाया। नाटककार पात्रोंने राजाकी प्रसन्नतार्थ अनेक प्रकार गीत, नृत्य, हावभाव, विभ्रमादि पूर्वक नाटकका खेल खेलना आरम्भ कर दिया, सो राजा रानी और सब पुरजन अपने योग्य आसनोंपर बैठकर सहर्ष वह अभिनय देखने लगे।

उन नाटककार पात्रोंके विविध भेष और हावभावोंसे रानीका चित्त चञ्चल होउठा और वह चमरी और रंगी नामकी अपनी दो सखियों सहित घरसे निकल पड़ी॥ तथा कुसंगमें पड़कर अपना शीलधर्मरूपी भूषण खो बैठी। वह ग्रामोंग्राम भ्रमण करती हुई वेश्याकर्म करने लगी। जीवोंके भाव तथा कर्मोंकी गति विचित्र है। देखो, रानी रनवासके सुख छोड़कर गली गलीकी कुत्ती होगई। सत्य है, इन नाटकोंसे कितने घर नहीं उजड़े? रानी जैसेकी यह दशा हुई तो अन्य जनोंका कहना ही क्या है।

राजा भी अपनी प्रियतमाके वियोगजनित दुःखको न सह सकनेके कारण पुत्रको राज्य देकर वनमें चला गया। और इष्टवियोग (आर्तध्यान) से मरकर हाथी हुआ, सो वनमें भटकते २ एक समय किसी पुण्य संयोगसे श्री मुनिराजका दर्शन होगया और धर्म बोध भी मिला, जिससे वह हाथी सम्यक्त्वको प्राप्त करके अणुव्रत पालन करने लगा। और आयुके अन्तमें चया, सो पाटलीपुत्र नगरमें महीचन्द्र नामका राजा हुआ।

यह महीचन्द्र राजा एक दिन वनक्रीड़ाको गया था। इसके पुण्योदयसे वहां (उद्यानमें) श्री मुनिराजके दर्शन होगये। तब सविनय साष्टांग नमस्कार करके राजा धर्मश्रवणकी इच्छासे वहां बैठ गया। इतनेमें कानी, कुबड़ी और कोढ़ी ऐसी तीन कन्या अत्यन्त दुःखित हुई वहां आई। उन्हें देखकर राजा महीचन्द्रको मोह उत्पन्न हुआ, तब राजाने श्री गुरुसे अपने मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा—तब श्री गुरुने इनके भवांतरका सम्बन्ध कह सुनाया कि—राजन्! तू अबसे

तीसरे भवमें बनारसका राजा विश्वसेन था और रानी तेरी विशालनयना थी, सो नाटकका अभिनय देखते हुए नाटककार पात्रोंके हावभावोंसे चञ्चलचित्त होकर तेरी रानी अपनी रंगी और चमरी नामकी दो दासियों सहित निकलकर कुपथगामिनी होगई। सो ये तीनों वेश्याकर्म करती हुई एक समय किसी राजाके पास कुछ याचनाको जारही थी कि रास्तेमें परम दिगम्बर मुनिराजको देखकर अपने कार्यके साधनमें अपशुकन मानने लगीं और रात्रि समय मुनिराजके पास आकर अपने घृणित स्वभावानुसार हावभाव दिखाने और मुनिराजके ध्यानमें विघ्न करने लगी, परन्तु जैसे कोई धूल फेंककर सूर्यको मलीन नहीं कर सकता है, उसी प्रकारसे वे कुलटाएं श्री मुनिराजको किंचित् भी ध्यानसे न चला सकीं। सत्य है क्या प्रलयकी पवन कभी अचल सुमेरुको चला सकती है?

स्त्री चरित्रके साथ साथ स्त्रियोंकी प्यारी रात्रि भी पूर्ण हुई। प्रातःकाल हुआ। सूर्य उदय होते ही ये दुष्टनी निष्फल-मनोरथ होकर वहांसे चली गईं और यहां मुनिराजके निश्चल ध्यानके कारण देवोंने जय जयकार शब्द करके पंचाश्चर्य किये।

निदान, ये तीनों मुनिको उपसर्ग करनेके कारण गलित कोढ़को प्राप्त हुईं; रूप कला, सौन्दर्य सब नष्ट होगया, और आयुके अन्तमें मरकर पांचवें नरक गईं। बहुत कालतक वहांके दुःख भोगकर उज्जयनीके पास ग्रामपलास नामके एक गृहस्थकी ये पुत्रियां हुई हैं, सो छोटी अवस्थामें माता पिता मर गए। पूर्व पापके कारण ये तीनों प्रथम कुरूपा—कानी, कुवड़ी, कोढ़ी और तिसपर भी भण्ड वचन बोलनेवाली हैं, इसीलिये ग्रामसे बाहर निकाल दी गई हैं, वहांसे भटकती हुई यहां आई हैं और तू अपनी पट्टरानीके वियोगसे दुःखित होकर मरा, सो हाथी हुआ तब श्री मुनिराजके उपदेशसे सम्यक्त्व सहित पंचाणुव्रत पालन करके मरा, सो स्वर्गमें देव हुआ। और देव पर्यायसे आकर यहां महीचन्द्र नामक राजा हुआ है। सो इनका तेरा पूर्वजन्मोंका सम्बन्ध होनेसे तुझे यह मोह हुआ है।

तब राजाने कहा—महाराज! क्या कोई उपाय ऐसा है कि जिससे ये कन्याएं पापसे छूटें? तब श्रीगुरुने कहा—राजन्! सुनो, यदि ये श्रद्धापूर्वक लब्धिविधान व्रत करें, तो सहज २ इस पापसे छुटकारा पावेंगी। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

भादों, माघ और चैत्र सुदी एकमसे तीन तक (तीन दिन) एक वर्षमें ऐसे ५ वर्षतक करे, पश्चात् उद्यापन करें अथवा दुगुणा व्रत करें व्रतके दिनोंमें या तो तेला करें या एकान्तर उपवास करें या एकासना ही नित्य करें। और श्री महावीरस्वामीकी प्रतिमाका पंचामृताभिषेक पूर्वक पूजनार्चन करें। तीनों काल सामायिक करें—" ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नम " यह जाप करें। जागरण और भजन करें। उद्यापनकी विधि—जब व्रत पूर्ण हो जावे, तब सकल संघको भोजन करावें, चार संघमें चार प्रकारका दान करें। शास्त्रोंका प्रचार करें। पूजनके उपकरण व शास्त्र श्री जिनालयमें पधरावें, इत्यादि।

इसप्रकार व्रतकी विधि और फल सुनकर उन तीनो कन्याओंने राजाकी सहायतासे व्रत पालन किया। और समाधिमरण कर पांचवें स्वर्गमें देव हुईं। राजा महीचन्द्र भी दीक्षा धर तप करके स्वर्ग गया। विशालनयना नाम रानीका जीव जो देव हुआ था, सो मगध देशके बाहन नगरमें काश्यप गोत्रीय मांडिल्य नाम ब्राह्मणकी सांडिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। चमरी व रंगीके जीव भी देव पर्यायसे चयकर मनुष्य हो तपकर उत्तम गतिको प्राप्त हुए।

जब श्री महावीर भगवानको केवलज्ञान हुआ, परंतु वाणी नहीं खिरी इसका कारण इन्द्रने जाना कि गणधर बिना वाणी नहीं खिरती है, सो इन्द्र गौतम ब्राह्मणके पास " त्रैकाल्य द्रव्यषट्कं " इत्यादि नवीन श्लोक बनाकर साधारण भेषमें गया और उसका अर्थ पूछा। जब गौतम उसके अर्थ लगानेमें गडबडाया तब इन्द्र उसे भगवानके समवशरणमें ले आया, सो मानस्तम्भ देखते ही गौतमका मान भंग होगया और प्रभुके सन्मुख जाकर नमस्कार करके दीक्षा ली। सो जिनकथित चारित्रके प्रभावसे उसे चारों ज्ञान होगये, और वह भगवानके गणधरोंमें प्रथम गणधर हुए, कितनेक काल जीवोंको सम्बोधन किया और महावीर प्रभुके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाणपदको प्राप्त हुआ। उन गौतमस्वामीको हमारा नमस्कार हो।

लब्धि विधान व्रत फल थकी, विशालनयना नार। गणधर हो लह मोक्षपद, किये कर्म सब क्षार॥

श्री मौन एकादशीव्रत कथा ।

घाति घात केवल लहो, लहो चतुष्क अनन्त । सकल मोक्ष मग जिन कियो, वन्दू सो अर्हंत ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे कौशल्य देश है । उसमे यमुना नदीके तटपर कौशाम्बी नामकी नगरी है, इसी नगरमे परम पूज्य छठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभुका जन्मकल्याणक हुआ था । एक समय इसी नगरम हरिवाहन नामका राजा और उसकी शशिप्रभा पट्टरानी थी । राजपुत्रका नाम सुकोशल था । यह राजकुमार सर्व विद्या और कलाओंमे निपुण होनेपर भी निरन्तर खेल तमाशो आदि क्रीडाओंमे निमग्न रहता था । और राजकाजकी ओर बिल्कुल भी ध्यान न देता था । इसलिये राजाको निरन्तर चिंता रहने लगी कि राजपुत्र राज्यकार्यमे योग नहीं देता है, तब भविष्यम कार्य कैसे चलेगा ? एक समय भाग्योदयसे सोमप्रभु नामके महा मुनिराज संघ सहित विहार करते हुए इसी नगरके उद्यानमे पधारे । राजाने वनमाली द्वारा शुभ समाचार सुनकर पुरवासियो सहित हर्षित होकर श्री गुरुके दर्शनोको प्रयाण किया । और वहा पहुँचकर भक्तिभावसे वंदना स्तुति करके धर्मश्रवणकी इच्छासे नतमस्तक होकर बैठ गया । श्री गुरुने प्रथम मिथ्यात्वके छुडानेवाले और ससारसे भय उत्पन्न करानेवाले ऐसे मोक्षमार्गका व्याख्यान सुनाया, मुनि और श्रावकके धर्मोको पृथक् २ करके समझाया और यह भी बताया कि यह श्रावक धर्म भी मुनिधर्मका कारण है और मुनिधर्म साक्षात् मोक्षका कारण है । इसलिये श्रावक धर्मको भी परम्परा मोक्षका कारण समझना चाहिए । यथार्थमे तो भव्य जीवोको मुनिधर्म ही धारण करना चाहिये, परन्तु यदि शक्तिहीनताके कारण एकाएक मुनिधर्म न धारण कर सकें, तो कमसे कम प्रतिमारूप श्रावकका धर्म ही धारण करें । और निरन्तर अपने भावोको बढाता और शरीरादि इन्द्रियो तथा मनको वश करता जावे, तब ही अभीष्ट सुखको प्राप्त होसकता है । श्रावक धर्म केवल अभ्यास ही के लिये है । इसलिए इसीमे रजायमान होकर इति नहीं कर देना चाहिये, किन्तु मुनिधर्मकी भावना भाते हुवे उसके लिये तत्पर रहना चाहिये ।

राजाने उपदेश सुनकर स्वशक्ति अनुसार व्रत धारण किया और विशेष वातोका श्रद्धान किया । पश्चात् अवसर

देखकर पूछने लगा–हे नाथ ! मेरा पुत्र विद्यादिमें निपुण होनेपर भी बालक्रीडाओंमें ही अनुरक्त रहता है और राज्यभोगमें कुछ भी नहीं समझता है अतः इसकी चिंता है कि भविष्यमें राज्यस्थिति कैसे रहेगी ?

राजाका प्रश्न सुनकर श्रीगुरुने कहा—इसी देशके रुट नाम नगरमें राजा रणसिंह और उसकी त्रिलोचना नामकी रानी थी। इसी नगरमें एक कुनबी रहता था। उसकी पुत्री तुङ्गभद्रा थी। इस भाग्यहीन कन्याके पापोदयसे शैशव अवस्थामें ही माता पिता आदि बंधु बांधव सब कालवश होगए और यह अनाथिनी अकेली अन्न वस्त्रसे वञ्चित हुई, जूठन पर गुजर करती समय बिताने लगी।

यह जब आठ वर्षकी हुई, तो एक दिन घास काटनेको वनमें गई थी वहां पिहताश्रव मुनिराजके दर्शन होगए। यह बालिका भी और लोगोंके समान श्री गुरुको नमस्कार करके धर्मश्रवण करने लगी, परन्तु भूखकी वेदनासे व्याकुल हुई। इसके कुछ भी समझमें नहीं आता था तब इस दुःखित कन्याने दुःखसे कातर होकर पूछा–हे दयानिधान गुरुदेव ! मैं जन्मकी अनाथिनी अन्न वस्त्र तकका कष्ट पा रही हूँ, इसलिए कृपाकर ऐसा कोई उपाय बताइए कि जिससे मेरा दुःख दूर होवे। तब श्री गुरुने कहा–हे पुत्री ! यह सब तेरे पूर्व जन्मके पापका फल है, अब तू श्री जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रंथ गुरु, और दयामई धर्म पर श्रद्धा करके भावसहित मौन एकादशीव्रतको पालन कर जिससे तेरे पापका क्षय होवे और संसारका अन्त आवे। सुन ! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है —

पौष वदी एकादशीको सोलह पहरका उपवास कर और ये सोलहों पहर जिनालयमें धर्म कथा तथा पूजाभिषेकादि धर्मध्यानमें व्यतीत कर, तीनों काल सामायिक कर, सोलहों पहर मौनसे रह, अर्थात् मुहसे न बोल, हाथ नाक आंख आदिसे संकेत भी न कर। इसप्रकार जब सोलह पहर होजावें, तब द्वादशीके दोपहरको पूजाभिषेक करके सामायिक वा स्वाध्याय कर और फिर अतिथि (मुनि, गृहत्यागी) श्रावक तथा साधर्मी गृहस्थ व दीन दुःखित भुखितको भोजन कराकर आप पारणा कर। जो कोई व्रती पुरुष हो उनको नारियल या खारक बादाम आदि बांट। इसप्रकार ग्यारह वर्ष तक यह व्रत करके फिर उद्यापन कर और जो उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत कर। उद्यापन विधि इस प्रकार है कि आवश्यक्ता होवे

तो श्री जिनमन्दिर बनवावे। २४ महाराजकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करके पधरावे, घण्टा, झालर, चौकी, चन्दोवा, छत्र, चमर, शास्त्रादि २४ चौबीस जिनालयोंमें पधरावे, शास्त्र भण्डारकी स्थापना करे, ग्रन्थ वितीर्ण करे, विद्यार्थियोंको भोजन करावे, यथा आवश्यक सबको जिमावे। नारियल आदि फल साधर्मियोंको बांटे, महापूजा विधान करे, दुखी अपाहिजोंको भोजन वस्त्र औषधि आदि दान करे। भयभीत जीवोंको अभयदान देवे, इत्यादि विधि सुन उस दरिद्रा कन्याने भावसहित व्रत पालन किया और अन्त समय सन्यास सहित णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर तेरे घर यह पुत्र हुआ है। यह पुत्र चरमशरीरी है, इसीसे राज्यभोगमें इसका चित्त नहीं लगता है, यह बहुत ही थोड़े समय घर रहेगा।

राजा इस प्रकार श्रीगुरुके मुखसे अपने पुत्रका वृत्तान्त सुनकर घर आया। संसार, देह, भोगोंसे विरक्त होकर उसने अपने पुत्रको राज्यतिलक किया पश्चात् विहताश्रव आचार्यके पास दीक्षा लेली। इसके साथ और भी बहुत राजाओंने दीक्षा ली।

और राजा सुकोशल राज्य करने लगा। सो यह अल्पसंसारी राजनीतिकी कुटिलताको न जानता हुआ सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगा। एक समय मतिसागर नाम भण्डारीने श्रुतसागर नाम मन्त्रीसे मन्त्र किया कि राजा राजनीतिसे अनभिज्ञ है, इसलिये इसे कैद करके मै तुम्हें राजा बनाये देता हूं। और मै मन्त्री होकर रहूंगा। परन्तु यह वार्ता मतिसागरके पुत्र और राजाके बालसखा द्वारा राजाके कान तक पहुंच गई। राजाने मतिसागरको इस कुटिलता व धृष्टताके बदले अपमान सहित देशसे निकाल दिया। और श्रुतसागरको राज्यभार सौंपकर आप अपने पिताके पास गए और दीक्षा ले ली।

वह मतिसागर भण्डारी भ्रमण करते हुए दुखसे (आर्तभावोंसे) मरणकर सिंह हुआ, सो वनमें विकराल रूप धारण किये अनेक जीवोंका घात करता हुआ विचरता था, कि उसी वनमें विहार करते हुए वे हरिवाहन और सुकोशलस्वामी आ पहुंचे। सिंहने इन्हें देखकर पूर्व बैरके कारण क्रोधित होकर शरीरको विदीर्ण कर दिया। वे मुनिराज उपसर्ग जानकर निश्चल हो शुक्लध्यानको धारणकर आत्मामें निमग्न होगये तब सिंह भी उपशान्त होकर वहांसे चला गया और वे मुनि अन्तकृतकेवली होकर सिद्धपदको प्राप्त हुए और वह सिंह मुनिहत्याके कारण मरकर नरकमें घोर दुःख भोगनेको चला गया। प्राणी निःसन्देह अपने ही किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख व दुःख भोगा करते हैं। इस प्रकार एक दरिद्रा कन्याने भी मौन एकादशी

व्रत श्रद्धा व भक्तिपूर्वक पालन किया जिसके फलसे वह सुकौशलस्वामी होकर सकल कर्मोंका क्षय कर सिद्धपदको प्राप्त हुई। और जो कोई भव्य जीव ज्ञान व श्रद्धानपूर्वक यह व्रत करें तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको पावेंगे।

सुभद्र कन्या कियो, मौन व्रत चित धार। पायो अविचल सिद्धपद, किये कर्म सब छार॥

श्री गरुडपंचमी व्रत कथा।

वीतराग पद वंदके, गुरु निर्ग्रंथ मनाय। गरुड पंचमी व्रत कथा, कहूं सबहिं सुखदाय॥

जम्बूद्वीप मध्य श्री भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है। वहां गरुड नामका विद्याधर राजा अपनी गरुडा नामकी रानी सहित सानन्द राज्य करता था। यह राजा अति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सदैव अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजा वंदना करता था।

एक दिन मार्गमें इसके पूर्वभवके वैरीने अपना बदला लेनेके हेतु इसकी विद्या छीन ली और इसे भूमिपर गिरा दिया। सो वह राजा अपने स्थानको जानेमें असमर्थ हुआ, उद्यानमें भ्रमण करता था कि सौभाग्यसे उसे परमगुरु निर्ग्रंथका अचानक दर्शन होगया। राजा श्रीगुरुको देखकर गद्गद् होकर विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगा–हे प्रभु! मैं मन्द-भागी विद्याविहीन हुआ भटक रहा हूं। कृपा करके मुझे कोई ऐसा यत्न बताइये कि जिससे पुन विद्या प्राप्त कर स्वस्थान तक जा सकूं।

यह सुनकर श्री गुरुने कहा—हे भद्र, धर्मके प्रसादसे सब काम स्वयमेव सिद्ध होते हैं। कहा है "धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण। धर्म पन्थ साधे बिना, नर तिर्यंच समान" इसलिये तू सम्यक्त्व सहित "गरुड पंचमी व्रत" को पालन कर इससे धरणेन्द्र व पद्मावती प्रसन्न होकर तेरी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

देखो इसका फल इस प्रकार है—

मालव देशमें चित्र नामका एक ग्राम है, वहा नागगौड नामी एक मनुष्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कमलावती था। उसके महाबल, परबल, राम, सोम और भीम ऐसे ५ पुत्र और चारित्रमती नामकी एक कन्या थी। तब नागगौडने अपनी चारित्रमती कन्याको ग्रामके धनदत्त गौडके पुत्र मनोरमणके साथ व्याह दी। ये दोनों नवदम्पति सुखसे रहने लगे।

कितनेक दिन पश्चात इनके शांति नामका एक बालक हुआ। फिर एक दिन सुगुप्त नामके मुनि चर्या (भिक्षा) के हेतु नगरमें पधारे, उन्हें देखकर चारित्रमतीको अत्यानन्द हुआ और उन्हें भक्तिपूर्वक पडगाह कर प्रासुक भोजनपान कराया। मुनिराजने भोजनके अनन्तर " अक्षय निधि " यह शब्द कहे। इतने हीमें एक आदमीने आकर चारित्रमतीको उसके पिताके बीमार होनेकी खबर दी। यह सुनकर चारित्रमतीने श्री गुरुसे पूछा—हे नाथ, मेरे पिताको कौनसी व्याधि हुई है? तब श्री गुरुने कहा—पुत्री! तेरे बापके खेतमें एक बडका झाड था, उसके नीचे एक सापकी बामी थी, उस बामीमें एक पार्श्वनाथ और दूसरी नेमिनाथ स्वामीकी प्रतिमा थी जिनकी पूजा हमेश भवनवासी देव करते थे। सो तेरे बापने उस झाडको कटवाकर बामीको नष्ट कराया है। इससे उन भवनवासी देवोंने क्रोधित होकर विषैली दृष्टिसे तेरे पिताको देखा है। और इससे वह मूर्छित होगया है। तब चारित्रमतीने पूछा—हे नाथ, अब क्या यत्न करना चाहिये जिससे पिताजीको आराम मिले। तब श्रीगुरुने कहा—पुत्री, तू श्रद्धापूर्वक गरुडपञ्चमी व्रत पालन कर इससे तेरे पिताकी मूर्छा दूर होकर वह स्वस्थ होजावेगा।

इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि श्रावण सुदी पंचमीको उपवास करना, तीनों सन्ध्याम सामायिक करना, मन्दिरमें जाकर श्री जिनेन्द्रका अभिषेक पूजन करना, फिर होम (हवन) करना, देवल (मन्दिर) में नागी बनाना, उसमें दूध, घी, मिश्री, धाणी, कमलगट्टा तथा फूल आदि डालना, अर्हत प्रभुके ५ अष्टक चढाना, ५ माला " ॐ अर्हद्भ्यो नमः " इस मन्त्रकी जपना, मंगल गान भजन जागरण करना, आरती करना आशीर्वाद बोलना। इस प्रकार पांच वर्ष तक यह व्रत पालना, पश्चात् उद्यापन करना। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो द्विगुणित (दूना) व्रत करना।

उद्यापनकी विधि इस प्रकार है कि—आरती, थाली, कलश, धूपदान, चमर, चन्दोवा, झारी, शास्त्र आदि उपकरण

पाच पाच लाकर जिनालयमें भेंट देवे। और समादान (डीवी), घटा, पानीके लिये घड़ा, झारी मंदिरमें पधरावे व अष्ट द्रव्यसे भाव सहित अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पाच श्रावक तथा श्राविकाओंको भोजन करावे तथा दु खित भुखितको करुणाबुद्धिसे आहारादि चारों प्रकारके दान देवे।

चारित्रमतीने नमस्कार कर उक्त व्रत ग्रहण किया। पश्चात् श्रीगुरुने कहा—पुत्री, यह व्रत तू अपने पीहर (पितृगृह) में जाकर करना और गंधोदक अपने पिताके गलेमें लगाना, इससे वह मूर्छा रहित होजायगा। और श्रावण सुदी ५ के दूसरे दिन श्रावण सुदी ६ को नेमनाथस्वामीका व्रत है। सो उस दिन अर्हंत भगवानके छ अष्टक और छ माला जपना, पूजन अभिषेक करना, हवन करना और पूजनादिके पश्चात् ककड़ी, नारियल आदि शुभ फल प्रत्येक छ छ लेकर छः सौभाग्यवती स्त्रियोंको देना। पश्चात् इसका भी उद्यापन करना अथवा दूना व्रत करना। इसप्रकार दोनों व्रत ग्रहण कर चारित्रमती अपने पिताके घर गई और यथाविधि व्रत पालन किया तथा अपने पिताको गंधोदक लगाया जिससे वह मूर्छा रहित हो स्वस्थ होगया। यह चर्चा सब नगरमें फैल गई और इसप्रकार यह गरुड़(नाग) पञ्चमीके व्रतका प्रचार सर्वत्र हुआ।

कुछ दिन बाद चारित्रमती घर (श्वसुरगृह) जाने लगी, परन्तु पिताके आग्रहसे और ठहर गई। एक दिन वह चारित्रमती अपने बापके खेतमें निर्मल सरोवर पर जाकर पूजा करने लगी। इसी बीचमें वे ही मुनिराज, जिन्होंने व्रत दिया था, वहा भ्रमण करते हुए आ पहुंचे।

उन्हें देखकर चारित्रमतीने नमस्कार वन्दना की और विनम्र हो धर्म श्रवणकी इच्छासे वहीं बैठ गई। धर्मोपदेश सुननेके अनन्तर चारित्रमतीने अपने घरकी कुशल पूछी। तब श्री मुनिने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा—बेटी, तेरे पुत्रको तेरी सौतीने नदीमें डाल दिया है। सो यदि तू श्रावण सुदी ६ का व्रत पालन करेगी, तो तेरे पुत्रको पद्मावती देवी लाकर तुझे देवेगी। यह सुनकर चारित्रमती घर आई और मन वचन कायसे छठका व्रत पालन किया। इससे कुछ दिन पश्चात् उसका पुत्र उसे मिल गया। इस प्रकार चारित्रमतीने मन वचन कायसे व्रत पालन किये और विधि सहित उद्यापन किये, पश्चात् धर्मध्यान करती हुई अन्तमें सन्याससे मरण कर वह स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई, वहासे आकर राजपुत्र हुई।

पश्चात् राजपुत्र भी कारण पाकर वैराग्यको प्राप्त हुआ और दीक्षा लेकर शुक्लध्यानके बलसे उन्होने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया। इस प्रकार व्रतका फल सुनकर गरुड विद्याधरने मन वचन कायसे व्रत पालन किया जिससे उसे पुन विद्या सिद्ध होगई और वह मनुष्योचित सुख भोगकर अन्तमे वैराग्यको प्राप्त होगया और दीक्षा ले तप करने लगा। पश्चात् शुक्लध्यानके बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धपद पाया। इसप्रकार यदि अन्य भव्य जीव भी श्रद्धा सहित व्रत पालन करेंगे, तो अवश्य ही उत्तम फल पावेंगे।

गरुड और चारित्रमती, अहि पचमि व्रत पाल। रहो शुद्ध शिवपद सही, तिनहिं नमू तिहु काल ॥

श्री द्वादशी व्रत कथा।

नमो सारदा पद कमल, स्याद्वाद मय सार। जा प्रसाद द्वादशी कथा, कहू भव्य हितकार ॥

मालवा प्रदेशमे पद्मावतीपुर नगर था। जहा नरब्रह्म राजा अपनी विजयावती रानी सहित राज्य करता था। इस राजाके एक कुबडी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीलावती पडा। एक दिन शीलावतीको रोती हुई देखकर राजा रानीको अत्यत दुःख हुआ व अनेक प्रकारकी चिंता करने लगे। किसी दिन भाग्योदयसे उसी नगरमे श्रमणोत्तम नामक मुनिराज विहार करते हुए आये। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हो नगरके लोगो सहित वन्दनाको गया। स्तुति वन्दनाके अनन्तर धर्मोपदेश श्रवण किया। पश्चात् अवसर पाकर राजाने पूछा—प्रभु! मेरी पुत्री शीलावतीको कौन पापके उदयसे यह दुःख प्राप्त हुआ है तब श्री गुरुने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा—ऐ राजा, सुनो। अवन्तीदेशमे आडलपुर नगर है, वहा राजपुरोहित देवशर्मा और उसकी कालसुरी नामकी ब्राह्मणी रहती थी। इस ब्राह्मणके कपिला नामकी कन्या थी। एक दिन यह कन्या सखियो सहित वनक्रीडा निमित्त उपवनमे गई और वहा आमके वृक्षके नीचे परम दिगम्बर ऋषिराजको कायोत्सर्ग ध्यान करते हुए देखा। सो अपने रूपादिके मदसे मदोन्मत्त उस कन्याने मुनिकी बहुत निंदा की। कुत्सित शब्द भी

कहने लगी कि यह नगा ढोंगी और अत्यन्त कामासक्त व्यभिचारी है। यह स्त्रियोंको अपना गुप्त अंग दिखलाता फिरता है, यह लज्जा रहित हुआ कभी वन और कभी वस्तीमें भटकता फिरता है। लड़ने करके अपनेको महात्मा बताता है इत्यादि। सा निंदा करते हुए मुनिराजपर मिट्टी धूल आदि डाली, मस्तकपर थूका तथा और भी बहुत उपसर्ग किया। सो मुनि तो उपसर्ग जीतकर शुक्ल ध्यानके योगसे केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्षको प्राप्त हुए और वह कन्या मरकर पहिले नर्कमें गई, वहां बहुत दुःख भोग वहांसे निकलकर गधी हुई, फिर सूकरी हुई, फिर हथनी हुई, फिर बिल्ली हुई, फिर नागनी हुई, फिर चांडालके घर कन्या हुई और वहांसे आकर अब यह तुम्हारे घर पुत्री हुई है। इस प्रकार पुत्रीके भवांतरकी कथा सुनकर राजाने कहा–प्रभु! इस पापके निवारण करनेके लिये कोई धर्मका अवलम्बन बताइये। तब श्री गुरुने कहा कि यदि यह द्वादशीका व्रत करे, तो पापका नाश होकर परम सुखको प्राप्त हो। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है, कि भादों सुदि १२ के दिन उपवास करे और सम्पूर्ण दिन धर्मध्यानमें बितावे, तीनों काल सामायिक करे, जिन मन्दिरमें जाकर वेदीके सन्मुख पंच रंगोंसे तंदुल रंगकर साथिया काढ़े, तथा मण्डल बनावे। उसपर सिंहासन रख चतुर्मुखी जिन बिम्ब पधरावे, फिर पञ्चामृताभिषेक करे, अष्ट द्रव्यसे पूजन करे। भजन और जागरण करे रात्रि और सुगन्धी पुष्पोंसे जाप देवे। फिर जलसे परिपूर्ण कलश लेकर उसपर नारियल रक्खे तथा नवीन कपड़ेसे ढांककर एक रकाबीमें अर्घ सहित लेकर तीन प्रद क्षिणा देवे। धूप खेवे, कथा सुने।

इस प्रकार श्रद्धायुक्त बारह वर्ष तक व्रत पाले। फिर उद्यापन करे। अर्थात् नवीन चार प्रतिमा पधरावे अथवा चार महान शास्त्र लिखाकर जिनालयमें पधरावे। कलश, छत्र, चमर, झारी, दर्पण आदि अष्ट मंगल द्रव्य तथा अन्य आव श्यक उपकरण मंदिरमें भेट देवे। चार प्रकारके संघको भक्तियुक्त तथा दीन दुखियोंको करुणाभावसे चारों प्रकारके दान देवे। जिसे उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करना चाहिये।

इस प्रकार व्रतकी विधि कहकर श्री गुरुने कहा–हे राजा, तुम्हारी पुत्री शीलावतीके अर्ककेतु और चंद्रकेतु नामके दो पुत्र होंगे। इनमेंसे अर्ककेतु निज बाहुबलसे संग्राममें अनेक राजाओंको जीतकर प्रख्यात राजा होगा, पश्चात् संसार

भोगोंसे विरक्त हो जिन दीक्षा लेकर परम तप करेगा। उसके साथ उसकी माता शीलावती भी दीक्षा लेगी और आयुके अन्तमें समाधिमरण कर स्त्री लिंग छेदकर बारहवें स्वर्गमे देव होगी। वहासे आकर छत्रपती राजा होगी। फिर दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जावेगी। अर्ककेतु और चन्द्रकेतु भी मोक्ष जावेंगे। यह समाचार सुनकर राजाने मुनिको नमस्कार किया और श्रद्धापूर्वक व्रतकी विधि सुनकर घर आया। मुनिराजके कह प्रमाण व्रत पालन तथा उद्यापन विधिपूर्वक किया जिससे भवांतरोंके पापोंका नाश हुआ। इसप्रकार द्वादशीके व्रतका माहात्म्य है। जो कोई भव्य जीव श्रद्धा और भक्तियुक्त व्रत करेंगे और कथा सुनेंगे उनको अक्षय पुण्य और सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार द्वादशि कथा, पूर्ण भई सुखकार। व्रत फल शीलावति लियो, अमर सुख भण्डार ॥

श्री अनंतव्रत कथा।

नमों अनत अनत गुण, नायक श्री तीर्थेश। कहूं अनत व्रतकी कथा, दीजे बुद्धि जिनेश ॥

इसी जम्बूद्वीपके आर्यखण्डमें कौशल देश है। उसमें अयोध्या नगरीके पास पद्मखण्ड नामक ग्राम था। उस ग्राममें सोमशर्मा नामका एक अति दरिद्र ब्राह्मण अपनी सोमा नामकी स्त्री और बहुतसी पुत्रियों सहित रहता था। वह (ब्राह्मण) विद्याहीन और दरिद्र होनेके कारण भिक्षा मांगकर उदर पोषण करता था, तो भी भरपेट खानेको न पाता था। तब एक दिन अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे उसने सह कुटुम्ब विदेशको प्रस्थान किया। चलते समय मार्गमें शुभ शकुन हुए, अर्थात सौभाग्यवती स्त्रियां सन्मुख मिलीं। कुछ और आगे चला तो क्या देखता है, कि हजारों नरनारी किसी स्थानको जा रहे हैं, पूछनेसे विदित हुआ कि वे सब अनन्तनाथ भगवानके समोशरणमें वन्दनाके लिये जा रहे हैं। यह जानकर वह ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया और समोशरणमें गया। वहां प्रभुकी वन्दना कर तीन प्रदक्षिणा दीं और नर कोठेमें यथास्थान जा बैठा। समवशरणमें दिव्यध्वनि सुनकर उसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई। पश्चात् चारित्रका कथन सुनकर उसने जुआ, मांस, मद्य, वेश्यासेवन, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन ये सात व्यसन त्याग किये। पंच उदुम्बर और तीन मकार त्याग ये अष्ट मूल-

गुण भी धारण किये। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतिशय लोभ इन पंच पापोंका एकदेश त्यागरूप अणुव्रत और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी ग्रहण किये। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित बारह व्रत लिये। पश्चात् कहने लगा—हे नाथ! मेरी दरिद्रता किस प्रकारसे मिटे सो कृपा करके कहिये। तब भगवानने उसे अनंत चौदशका व्रत करनेको कहा। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि भादों सुदी ११—१२ और १३ को एकासना करे। अर्थात् एकासनसे मौन सहित स्वादरहित प्रासुक भोजन करे, सात प्रकार गृहस्थोंके अन्तराय पाले, पश्चात् चतुर्दशीके दिन उपवास करे, चारों दिन ब्रह्मचर्य रखे, भूमिपर शयन करे, व्यापार आदि ग्रहारम्भ न करे, मोहादि रागद्वेष तथा क्रोध मान माया लोभ हास्यादिक कषायोंको छोड़े, चांदी या रेशम सूत आदिका अनंत बनाकर, इसमें प्रत्येक गांठपर १४ गुणोंका चिन्तवन करके १४ गांठ लगाना। प्रथम गांठपर ऋषभनाथ भगवानसे अनंतनाथ भगवान तक १४ तीर्थंकरोंका नामउच्चारण करे। दूसरी गांठपर सिद्ध परमेष्ठीके १४ गुण चिन्तवन करे। तीसरी पर १४ मुनि जो मतिश्रुत अवधिज्ञान युक्त हो गये हैं उनका नाम उच्चारण करे। चौथीपर केवली भगवानके १४ अतिशय केवलज्ञान कृत स्मरण करे। पांचवीं पर जिनवाणीमें जो १४ पूर्व हैं उनका चिन्तवन करे। छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका विचार करे। सातवीं पर चौदह मार्गणाओंका स्वरूप विचारे। आठवीं पर १४ जीवसमासोंका विचार करे। नवमीं पर गङ्गा आदि १४ नदियोंका नामोच्चारण करे। दशवींपर तीन लोक जो १४ राजू प्रमाण ऊँचा है उसका विचार करे। ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका चिन्तवन करे। बारहवीं पर चौदह स्वर (अक्षर) चिन्तवन करे। तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका विचार करे। चौदहवीं गांठपर मुनिके मुख्य १४ दोष टालकर जो आहार लेते हैं उनका विचार करे। इसप्रकार १४ गांठ लगाकर मेरुके ऊपर स्थापित प्रतिमाके सन्मुख इस अनन्तको रखकर अभिषेक करे। अनन्तनाथ प्रभुकी पूजन करे फिर नीचे लिखा मंत्र १०८ बार जपे—

मंत्र—ॐ नमो अर्हते भगवते अणतो अनन्त सिद्धा धम्म भगवतो महविद्धा, ॐ महा विद्धा अनन्तानन्त केवलीय अनन्त केवल णाणे अनन्त केवल दसणे, अणु पुन गामणे, अनन्ते अनन्तागम केवलि स्वाहा, (१) अथवा छोटा मंत्र जपे।

मंत्र—ॐ ह्रीं अर्हं हंस अनन्तकेवलिने नमः (२)

इसप्रकार चारों दिन अभिषेक, जप और जागरण भजन पूजादि करे। फिर पूनमके दिन उस अनन्तको दाहिनी भुजापर या गलेमें बांधे। पश्चात् उत्तम, मध्यम या जघन्य पात्रोंमेंसे जो समयपर मिल सके आहार आदि दान देकर आप पारणा करे। इसप्रकार १४ वर्ष तक करे। पश्चात् उद्यापन करे। १४ [illegible] उपकरण मंदिरमें देवे, जैसे शास्त्र, चमर, छत्र, चौकी आदि। चार प्रकार संघको आमंत्रण करके धर्मकी प्रभावना करे। यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इसप्रकार श्रीमुखसे व्रतकी विधि और उत्तम फल सुनकर उस ब्राह्मणने स्त्री सहित यह व्रत लिया। और भी बहुत लोगोंने यह व्रत लिया। पश्चात् नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने ग्राममें आया और भाव सहित १४ वर्ष व्रतका विधियुक्त पालन करके उद्यापन किया। इससे दिनों दिन उसकी बढ़ती होने लगी। उसके साथ रहनेसे और भी बहुत लोग धर्ममार्गमें लग गये। क्योंकि लोग जब उसकी इसप्रकार बढ़ती देखकर उससे इसका कारण पूछते तो वह अनन्त व्रत आदि व्रतोंकी महिमा और जिनभाषित धर्मके स्वरूपका कथन कह सुनाता। इससे बहुत लोगोंकी श्रद्धा उसपर होजाती और वे उसे गुरु मानने लगते। इसप्रकार वह ब्राह्मण भलेप्रकार सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें सन्याससे मरण कर स्वर्गमें देव हुआ। उसकी स्त्री भी समाधिसे मरकर उसी स्वर्गमें उसीकी देवी हुई। अपनी पूर्व पर्यायका अवधिसे विचार धर्मध्यान सेवन करके वहांसे चये, सो वह ब्राह्मणका जीव अनन्तवीर्य नामका राजा हुआ और ब्राह्मणी उसकी पट्टरानी हुई। ये दोनों दीक्षा लेकर अनन्तवीर्य तो इसी भवसें मोक्षको प्राप्त हुए और श्रीमती स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। वहांसे चयकर मध्य लोकमें मनुष्यभव धारण कर संयम ले मोक्ष जावेगी। इसप्रकार एक दरिद्र ब्राह्मणी अनन्त व्रत पालकर सद्गतिको पाकर उत्तमोत्तम गतिको प्राप्त हुई। यदि अन्य भव्यजीव पालेंगे, तो वे भी सद्गति पावेंगे।

सोमशर्म सोमा सहित, अनन्त चौदश व्रत पाल। लही स्वर्ग अरु मोक्षपद, ते वन्दूं त्रैकाल॥

श्री अष्टाह्निका (नन्दीश्वर) व्रत कथा ।

वन्दो पांचो परमगुरु, चौवीसों जिनराज । अष्टाह्निका व्रतकी कहूं, कथा सबहि सुखकाज ॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्डमें अयोध्या नामका एक सुन्दर नगर है। वहां हरिसेन नामका चक्रवर्ती राजा अपनी गन्धर्वश्री नामकी पट्टरानी सहित न्यायपूर्वक राज्य करता था। एक दिन बसन्त ऋतुमें राजा नगरजनों तथा अपनी ९६००० रानियों सहित वनक्रीड़ाके लिये गया। वहां निरापद स्थानमें एक स्फटिक शिलापर अनन्त क्षीणशरीरी महातपस्वी परम दिगम्बर अरिंजय और अमितंजय नामक चारण मुनियोंको ध्यानारूढ देखे। सो राजा भक्तिपूर्वक निज वाहनसे उतर कर पटरानी आदि समस्तजनों सहित श्री मुनियोंके निकट बैठ गया और सविनय नमस्कार कर धर्मका स्वरूप सुननेकी अभिलाषा प्रगट करता हुआ। मुनिराज जब ध्यान कर चुके तो धर्मवृद्धि दी, और पश्चात धर्मोपदेश करने लगे।

मुनिराज बोले—राजा ! सुनो। संसारमें कितनेक लोग, गङ्गादि नदियोंमें नहानेको, कोई कंदमूलादि भक्षणको, कोई पर्वतसे पड़नेमें, कोई गयामें श्राद्धादि पिंडदान करनेमें, कोई ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिककी पूजा करनेमें वा भैरों, भवानी, काली आदि देवियोंकी उपासनामें धर्म मानते हैं अथवा रवि ग्रहादिकोंके जप कराने और मस्तमांडों सदृश कुतपस्वियों आदिको दान देनेमें कल्याण होना समझते हैं, परन्तु यह सब धर्म नहीं है और न इनसे आत्महित होता है किन्तु केवल मिथ्यात्वकी वृद्धि होकर अनन्त संसारका कारण बन्ध ही होता है। इसलिये परम पवित्र अहिंसा (दयामई) धर्मको धारण कर, जो समस्त जीवोंको सुखदाई है और निर्ग्रन्थ मुनि (जो संसारके विषयभोगोंसे विरक्त ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन हैं, किसी प्रकारका परिग्रह आडम्बर नहीं रखते हैं और सबको हितकारी उपदेश देते हैं) को गुरु समझकर उनकी सेवा वैयावृत करे, जन्म, मरण, राग, शोक, भय, परिग्रह, क्षुधा, तृषा, उपसर्ग आदि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित वीतराग देवका आराधन करे। जीवादि तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करके निजात्म तत्वको पहिचाने, यही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन तथा ज्ञानपूर्वक सम्यक्चारित्रका धारण करे, यही मोक्ष (कल्याण) का मार्ग है।

सातों व्यसनका त्याग, अष्ट मूलगुण धारण, पञ्चाणुव्रत पालन इत्यादि गृहस्थोंका चारित्र है और सर्व प्रकार आरम्भ

परिग्रहसे रहित द्वादश प्रकारका तप करना, पच महाव्रत, पच समिति, तीन गुप्ति आदिका धारण करना सो अट्ठाइस मूल गुणों सहित मुनियोंका धर्म है (चारित्र है)। इसप्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजाने पूछा—प्रभो, मैंने ऐसा कौन पुण्य किया है जिससे यह इतनी बडी विभूति मुझे प्राप्त हुई है।

तब श्री गुरुने कहा, कि इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामका वैश्य और उसकी सुन्दरी नामकी पत्नी रहती थी, उसके गर्भसे श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द्र ये तीन पुत्र हुए। सो श्रीवर्माने एक दिन मुनिराजको वन्दना करके आठ दिनका नन्दीश्वर व्रत किया, और उसे बहुत कालतक यथाविधि पालन कर आयुके अन्तमें सन्यासमरण किया जिससे प्रथम स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ, वहां असख्यात वर्षों देवोचित सुख भोगकर आयु पूर्णकर चया सो इसी अयोध्यानगरीमें न्यायी और सत्यप्रिय राजा चक्रबाहुकी रानी विमलादेवीके गर्भसे तू हरिसेन नामका पुत्र हुआ है। और तेरे नन्दीश्वर प्रभावसे यह नव निधि, चौदह रत्न, छयानवे हजार रानी, आदि चक्रवर्तिकी विभूति और यह छः खण्डका राज्य प्राप्त है। और तेरे दोनों भाई जयकीर्ति और जयचन्द्र भी श्री धर्मगुरुके पाससे श्रावकके बारह व्रतो सहित उक्त नन्दीश्वर पाल कर आयुके अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए थे सो वहांसे चय कर वे हस्तिनापुरमें विमल नामा वैश्यकी साध्वी सती लक्ष्मीमतिके गर्भसे अरिंजय और अमितंजय नामके दोनों पुत्र हुए सो वे दोनों भाई हम ही हैं। हमको पिताजीने जैन उपाध्यायके पास चारों अनुयोग आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढाये और अध्ययन कर चुकनेके अनन्तर कुमार काल बीतने पर हम लोगोंके ब्याहकी तैयारी करने लगे, परंतु हम लोगोंने ब्याहको बन्धन समझकर स्वीकार नहीं किया और बाह्याभ्यन्तर परिग्रहको त्याग करके श्री गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण की। सो तपके प्रभावसे यह चारण-ऋद्धि प्राप्त हुई है। यह सुनकर राजा बोला—हे प्रभु ! मुझे भी कोई व्रतका उपदेश करो, तब श्री गुरुने कहा कि तुम नन्दीश्वर व्रत पालो और श्री सिद्धचक्रकी पूजा करो। इस व्रतकी विधि इस प्रकार है सो सुनो—

इस जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्रादि असख्यात समुद्र और धातकीखडादि असख्यात द्वीप एक दूसरेको चूडीके आकार घेरे हुए दूने दूने विस्तारको लिये हैं। उन सब द्वीपोंमें जम्बूद्वीप नाभिवत् सबके मध्य है, सो जम्बूद्वीपको आदि

लेकर, जो धातकीखण्ड, पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर, और नन्दीश्वर द्वीपमें प्रत्येक दिशामें एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार (१३) तेरह पर्वत हैं। चारों दिशाओंके मिलकर सब ५२ पर्वत हुए। इन प्रत्येक पर्वतोंपर अनादिनिधन (शाश्वते) अकृत्रिम जिन भवन हैं और प्रत्येक मंदिरमें १०८ जिनबिम्ब अतिशययुक्त विराजमान हैं, ये जिनबिम्ब ५०० धनुष ऊंचे हैं। वहां इन्द्रादि देव जाकर नित्यप्रति भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं परन्तु मनुष्यका गमन नहीं होता, इसलिये मनुष्य उन चैत्यालयोंकी भावना अपने २ स्थानीय चैत्यालयोंमें ही भाते हैं। और नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल माडकर वर्षमें तीनबार (कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ मासके शुक्ल पक्षोंमें अष्टमीसे पूनम तक) आठ आठ दिन पूजनाभिषेक करते हैं। और आठ दिन व्रत भी करते हैं। अर्थात् सुदी सातमसे धारणा करनेके लिये नहाकर प्रथम जिनेन्द्रदेवका अभिषेक पूजा करे, फिर गुरुके पास अथवा गुरु न मिलें तो जिन बिंबके सन्मुख खडे होकर व्रतका नियम करे।

सातमसे पडिमा तक ब्रह्मचर्य रक्खे। सातमको एकासन करे, भूमिपर शयन करे, सचित्त पदार्थोंका त्याग करे। आठमको उपवास करे, रात्रि जागरण करे, दिनमें मण्डल माडकर अष्टद्रव्योंसे पूजा और अभिषेक करे, पश्च मंत्रकी स्थापना कर पूजा करे, चौबीस तीर्थंकरोंकी पूजा जयमाल पढे, नन्दीश्वर व्रतकी कथा सुने और ' ॐ ह्रीं नन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ' इस मंत्रकी १०८ जाप करे।

आठमके उपवाससे १० दश लाख उपवासोंका फल मिलता है। नवमीको सब क्रिया आठमके समान ही करना, केवल ' ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः ' इस मंत्रकी १०८ जाप करे और दोपहर पश्चात् पारणा करे। इस दिन दश हजार उपवासोंका फल होता है। दशमीके दिन भी सब क्रिया आठमके समान ही करे, केवल ' ॐ ह्रीं त्रिलोकसारसंज्ञाय नमः ' इस मंत्रका १०८ जाप करे और केवल पानी और भात खावे। इस दिन व्रतका फल साठ लाख उपवासके समान होता है। ग्यारसके दिन भी सब क्रिया आठमके समान करे, सिद्धचक्रकी त्रिकाल पूजा करे और ' ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः ' इस मंत्रका १०८ बार जाप करे और ऊनोदर (अल्प भोजन) करे।

इस दिनके व्रतसे ५० लाख उपवासका फल होता है। बारसको भी सब क्रिया ग्यारसके ही समान करे और '' ह्रीं पञ्चमहालक्षणसञ्ज्ञाय नमः ' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा एकासन करे, इस दिनके व्रतसे ८४ लाख उपवासोंका फल होता है। तेरसके दिन भी सर्व क्रिया बारसके ही समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसञ्ज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ बार जप करे और इमली और भातका भोजन करे। इस दिनके व्रतसे ४० लाख उपवासका फल मिलता है।

चौदसके दिन सब क्रिया ऊपरके समान ही करे। और 'ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा तृण (घास) साग यदि शुद्ध हो तो उसके साथ अथवा पानीके साथ भात खावे। इस दिन व्रतका फल १ करोड उपवासका होता है। पूनमके दिन सब क्रिया ऊपरके ही समान करे, केवल 'ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसञ्ज्ञाय नमः' इस मंत्रका १०८ जाप करे तथा चार प्रकारके आहारका त्याग करे, अनशन व्रत करे, इस दिनके व्रतका तीन करोड पाच लाख उपवासके जितना फल होता है। पश्चात् पडिमाके दिन पूजनादि क्रियाके अनन्तर घर आकर चार प्रकार संघको चार प्रकारका दान करके आप पारणा करे।

जो कोई इस व्रतको तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्ग-सुख मिलता है। पीछे कितनेक भवमें नियमसे मोक्षपद पाता है और जो पाच वर्ष करता है वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर सातवें भव मोक्ष जाता है तथा जो सात वर्ष एवं आठ वर्ष तक व्रत करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी योग्यतापूर्वक उसी भवसे भी मोक्ष जाता है। इस व्रतको अनन्तवीर्य और अपराजितने किया, सो वे दोनो चक्रवर्ती हुए। और विनयकुमार इस व्रतके प्रभावसे चक्रवर्तीका सेनापति हुआ। जरासिंधुने पूर्वजन्ममें यह व्रत किया, जिससे वह प्रतिनारायण हुआ। जयकुमार सुलोचनाने यह व्रत किया जिससे वह अवधिज्ञानी होकर ऋषभनाथ भगवानका ७२ वा गणधर हुआ। और उसी भवमें मोक्ष गये। सुलोचना भी आर्यिकाके व्रत धारणकर स्त्रीलिंग छेद स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। श्रीपालका भी इससे कोढ गया और उसी भवसे मोक्ष भी हुआ। अधिक कहातक कहा जाय? इस व्रतकी महिमा कोटि जीभसे भी नहीं कही जासक्ती है।

इस प्रकार तीन, पाच या सात (आठ) वर्ष इस व्रतको करके उद्यापन करे, आवश्यकता हो तो नवीन-जिनालय

बनावे, सब संघको तथा विद्यार्थीजनोंको मिष्टान्न भोजन करावे, चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा पधरावे, शान्ति हवन आदि शुभ कार्य कर, प्रतिष्ठा करावे, पाठशाला बनावे, ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करे और प्रत्येक प्रकारके उपकरण आठ आठ मंदिरजीमें भेट करे, इसप्रकार उत्साहसे उद्यापन कर। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दूना व्रत करे इत्यादि। इसप्रकार राजा हरिसेनने व्रतकी विधि और फल सुनकर मुनिराजको नमस्कार किया और घर जाकर कितनेक वर्षोंतक यथाविधि व्रत पालन करके पश्चात् संसार-भोगोंसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली, और तपके प्रभाव व शुक्लध्यानके बलसे चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक देशोंमें विहार कर भव्यजीवोंको संसारसे पार होनेवाले सच्चे जिन-मार्गमें लगाया। पश्चात् आयुके अन्तमें शेष कर्मोंको नाशकर सिद्ध पद पाया।

इसप्रकार यदि अन्य भव्यजीव भी इस व्रतका पालन करेंगे तो वे उत्तमोत्तम सुखोंको अपने अपने भावोंके अनुसार उत्तम गतियोंको प्राप्त होवेंगे। तात्पर्य-व्रतका फल तब ही होता है जब कि मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषाय तथा मोहको मन्द किया जाय। इसलिये इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये।

नन्दीश्वर व्रत फल लिया, श्री हरिसेन नरेश। कर्मनाश शिवपुर गया, वन्दूं चरण हमेश॥

श्री रविवार (आदित्यवार) व्रत कथा।

काशी देशकी बनारस नगरीका राजा महीपाल अत्यन्त प्रतापशाली और न्यायी था। उसी नगरमें मतिसागर नामका एक सेठ और गुणसुन्दरी नामकी उसकी स्त्री थी। इस सेठके पूर्व पुण्योदयसे उत्तमोत्तम गुणवान तथा रूपवान सात पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें छः का तो विवाह होगया था, केवल लघुपुत्र गुणधर कुंवारे थे। सो गुणधर किसी दिन वनमें क्रीडा करते विचर रहे थे तो उनको गुणसागर मुनिके दर्शन होगये। वहां मुनिराजका आगमन सुनकर और भी बहुत लोग वन्दनार्थ वनमें आये थे और सब स्तुति वन्दना करके यथास्थान बैठे। श्रीमुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहकर अहिंसादि

धर्मोंका उपदेश करने लगे। जब उपदेश होचुका तब साहूकारकी स्त्री गुणसुन्दरी बोली—स्वामी, मुझे कोई व्रत दीजिये। तब मुनिराजने उसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतका उपदेश दिया और सम्यक्त्वका स्वरूप समझाया, और पीछेसे कहा—बेटी! तू आदित्यवारका व्रत पाल। सुन, इस व्रतकी विधि इस प्रकार है कि आषाढ मासके प्रथम पक्षमे प्रथम रविवारसे लेकर नव रविवारो तक यह व्रत करना चाहिये।

प्रत्येक रविवारके दिन उपवास करना या बिना नमक (मीठा) के अलोना भोजन एकवार (एकासना) करना। पार्श्वनाथ भगवानकी पूजा अभिषेक करना। घरके सब आरम्भका त्याग कर विषय और कषाय भावोंको दूर करना, ब्रह्मचर्यसे रहना। रात्रि जागरण भजनादि करना और 'ॐ ह्रीं अर्ह श्री पार्श्वनाथाय नमः' इस मंत्रका १०८ बार जाप करना। इसप्रकार नव वर्ष तक यह व्रत करके पश्चात् उद्यापन करना। प्रथम वर्ष नव उपवास करना, दूसरे वर्ष नमक बिना भात और पानी पीना, तीसरे वर्ष नमक बिना दाल—भात खाना, चोथे वर्ष बिना नमककी खिचड़ी खाना, पांचवें वर्ष बिना नमककी रोटी खाना, छठें वर्ष बिना नमक दही भात खाना, सातवें वर्ष तथा आठवें वर्ष नमक बिना मूंगकी दाल और रोटी खाना, और नवम वर्ष एकवारका परोसा हुआ (एकठाना) नमक बिना भोजन करना, फिर दूसरेवार नहीं लेना और थालीमें जूठन भी नहीं छोड़ना। नवधा भक्ति कर मुनिराजको भोजन कराना और नव वर्ष पूर्ण होनेपर उद्यापन करना। सो नव नव उपकरण मन्दिरोंमें चढ़ाना, नव शास्त्र लिखाना, नव श्रावकोंको भोजन कराना, नव नव फल नव घर श्रावकोंको बांटना, समवशरणका पाठ पढ़ना, पूजन विधान करना इत्यादि।

इसप्रकार गुणसुन्दरी व्रत लेकर घर आई, और सब कथा घरके लोगोंको कह सुनाई। घरवालोंने सुनकर इस व्रतकी बहुत निंदा की। इसलिये उसी दिनसे उनके घरमें दरिद्रताका वास हो गया, सब लोग भूखों मरने लगे, तब सेठके सातों पुत्र सलाह करके परदेशको निकले। सो साकेत (अयोध्या) नगरीमें जिनदत्त सेठके घर आकर नौकरी करने लगे और सेठ सेठानी बनारस हीमें रहे। कुछ कालके पश्चात् बनारसमें कोई अवधिज्ञानी मुनि पधारे, सो दरिद्रतासे पीड़ित सेठ सेठानी भी वंदनाको गये, और दीन भावसे पूछने लगे—हे नाथ! क्या कारण है कि हम लोग ऐसे रंक होगये? तब मुनिराजने

कहा, कि तुमने मुनिप्रदत्त रविव्रतकी निंदा की है इसीसे यह दशा हुई है। यदि तुम पुनः श्रद्धा सहित इस व्रतको करो तो तुम्हारी खोई हुई सम्पत्ति तुम्हें फिर मिलेगी। सेठ सेठानीने मुनिको नमस्कार करके पुन रविव्रत लिया, और श्रद्धा सहित पालन किया, जिससे उनको फिरसे धन धान्यादिककी अच्छी प्राप्ति होने लगी।

परन्तु इनके सातों पुत्र साकेतपुरीमें कठिन मजूरी करके पेट पालते थे। एक दिन लघु भ्राता गुणधर वनमें घास काटनेको गया था, सो शीघ्रतासे गट्ठा बांधकर घर चला आया और हसिया (दातड़) वहीं भूल आया। घर आकर उसने भावजसे भोजन मांगा। तब वह बोली—लालाजी ! तुम हसिया भूल आये हो, सो जल्दी जाकर ले आओ पीछे भोजन करना, अन्यथा हसिया कोई ले जायगा तो सब काम अटक जायगा। बिना द्रव्य नया दातड़ा कैसे आवेगा ? यह सुनकर गुणभद्र तुरत ही पुन वनमें गये तो देखा कि हसियापर बड़ा भारी सांप लिपट रहा है।

यह देख वे बहुत दुःखी हुवे कि दातड़ा बिना लिये तो भोजन नहीं मिलेगा। और दातड़ा मिलना कठिन होगया है। तब वे विनीत भावसे सर्वज्ञ वीतराग प्रभुकी स्तुति करने लगे। सो उनके एकाग्रचित्तसे स्तुति करनेके कारण धरणेन्द्रका आसन हिला, उसने समझा कि अमुक स्थानमें पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके भक्तको कष्ट होरहा है। तब करुणा करके पद्मावती देवीको आज्ञा की कि तुम जाकर प्रभुभक्त गुणधरका दुःख निवारण करो। यह सुनकर पद्मावती देवी तुरन्त वहां पहुँची। और गुणधरसे बोली–हे पुत्र ! तुम भय मत करो। यह सोनेका दातड़ा और रत्नका हार तथा यह रत्नमई पार्श्वनाथ प्रभुकी बिम्ब भी ले जाओ, सो भक्तिभावसे पूजा करना, इससे तुम्हारा दुःख शोक दूर होगा। गुणधर, देवी द्वारा प्रदत्त द्रव्य और जिनबिम्ब लेकर घर आये। सो प्रथम तो उनके भाई यह देखकर डरे, कि कहीं यह चुराकर तो नहीं लाया है, क्योंकि ऐसा कौनसा पाप है जो भूखा नहीं करता है, परन्तु पीछे गुणधरके मुखसे सब वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसप्रकार दिनों दिन उनका कष्ट दूर होने लगा और थोड़े ही दिनोंमें वे बहुत धनी होगये। पश्चात् उन्होंने एक बड़ा जिन मन्दिर बनवाया, प्रतिष्ठा कराई, चतुर्विध संघको चारों प्रकारका यथायोग्य दान दिया और बड़ी प्रभावना की। जब

यह सब वार्ता राजाने सुनी, तब उन्होंने गुणधरको बुलाकर सब वृत्तान्त पूछा, और अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी परम सुन्दरी कन्या गुणधरको व्याह दी, तथा बहुतसा दान दहेज दिया। इसप्रकार बहुत वर्षों तक वे सातों भाई राजमान्य होकर सानन्द वहीं रहे, पश्चात् माता पिताका स्मरण करके अपने घर आये, और माता पितासे मिले। पश्चात् बहुत काल तक मनुष्योचित्त सुख भोगकर सन्यास पूर्वक मरण कर यथायोग्य स्वर्गादि गतिको प्राप्त हुए और गुणधर उससे तीसरे भव मोक्ष गये। इस-प्रकार व्रतके प्रभावसे मतिसागर सेठका दरिद्र दूर हुआ और उत्तमोत्तम सुख भोगकर उत्तम उत्तम गतियोंको प्राप्त हुए। जो और भव्यजीव श्रद्धा सहित बारह व्रतोंपूर्वक इस व्रतको पालन करेंगे, वे भी उत्तम गति पावेंगे।

यह विधि रविव्रत फल लियो, मतिसागर गुणवान। दुःख दारिद्र नशो सकल, अन्त लह्यो निर्वान॥

श्री पुष्पाञ्जलि व्रत कथा।

नमों सिद्ध परमात्मा, सकल सिद्धि दातार। पुष्पाञ्जलि व्रतकी कथा, कहूं भव्य सुखकार॥

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तटपर मंगलावती देशमें रत्नसंचयपुर नामका एक नगर है। वहाका राजा वज्रसेन अपनी जयावती रानी सहित सानन्द राज्य करता था, परन्तु घरमें पुत्र न होनेके कारण उदास रहता था। सो एक दिन वह राजा जब रानी सहित जिन मंदिरमें दर्शन करनेको गया, तो वहा उसने ज्ञानसागर मुनिराजको बैठे देखा, और भक्ति सहित उनकी पूजा वन्दना करके धर्मोपदेश सुना।

पश्चात् अवसर पाकर विनय सहित राजाने पूछा—हे प्रभु! हमारी रानीके पुत्र न होनेसे यह अत्यंत दु:खित रहती है, सो क्या इसके कोई पुत्र होगा? तब मुनिराजने विचार कर कहा—राजा! चिंता न करो, इसके अत्यन्त प्रभावशाली पुत्र होगा, जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा।

यह सुनकर राजा रानी हर्षित होकर घर आये और सुखसे रहने लगे, पश्चात् कुछ दिनोंके बाद रानीको शुभ स्वप्न

हुए, और एक देव स्वर्गसे रानीके गर्भमें आया। और नव मास पूर्ण होनेपर रत्नशेखर नामधारी सुन्दर पुत्र हुआ। एक दिन रत्नशेखर अपने मित्रोंके साथ वन क्रीडा कर रहा था तब इसे आकाश मार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने देखा सो देखते ही प्रेमसे विह्वल होकर नीचे आया और राजपुत्रको अपना परिचय देकर उसका मित्र बन गया। ठीक है—

" पुण्यसे क्या नहीं होता है ? "

पश्चात् राजपुत्रने भी उसे अपना परिचय देकर मेरुपर्वतकी वन्दना करनेकी इच्छा प्रगट की। तब मेघवाहन बोला—हे कुमार! हमारे विमानमें बैठकर चलो, परन्तु रत्नशेखरने यह स्वीकार नहीं किया और कहा कि मुझे ही विमान रचनाकी विधि या मंत्र बताओ। सो विद्याधरने ऐसा ही किया तब कुमारने मित्र विद्याधरकी सहायतासे ५०० विद्याएं साधीं पश्चात् मेघवाहनादि मित्रों सहित ढाईद्वीपके समस्त जिन मंदिरोंकी वन्दनार्थ प्रस्थान किया। सो विजयार्द्ध पर्वतके सिद्धकूट चैत्यालयमें पूजा स्तवन करके रङ्गमण्डपमें बैठा था कि इतनेमें दक्षिण श्रेणी रथनुपुर नगरकी राजकन्या मदनमंजूषा भी दर्शनार्थ सखियों सहित वहां आई, और रत्नशेखरको देखकर मोहित होगई, परन्तु लज्जावश कुछ कह न सकी, और खेदितचित्त लौट गई।

[illegible] राजा रानीने उसके खेदका कारण जानकर स्वयंवर मण्डप रचा, और सब राजपुत्रोंको आमंत्रण दिया, सो शुभ बहुतसे राजपुत्र वहां आये, उनमें रत्नशेखर भी आया। जब कन्या वरमाला लेकर आई तो उसने रत्नशेखरके ही कंठमें वरमाला डाली। इसपर विद्याधर राजा बहुत बिगड़े कि यह विद्याधरकी कन्या है, भूमिगोचरीको नहीं ब्याह परन्तु रत्नशेखरने उनको युद्धके लिये तत्पर देख सबको थोड़ी देरमें जीतकर यथास्थान विदा कर दिया। इनका बहुतसे राजा इनके आज्ञाकारी हुए, और वहीं इनको शुभोदयसे चक्ररत्नकी प्राप्ति भी हुई, तब छह हो व कुमार चक्रवर्तीपदसे भूषित होकर निज नगरमें आये और पितादि गुरुजनोंसे मिलकर आनन्दसे

न राजा रत्नशेखर माता पिता सहित सुदर्शनमेरुकी वन्दनाको गये थे सो वहां भाग्योदयसे दो चारण

मुनियोंको देखकर भक्तिपूर्वक वन्दना स्तुति कर धर्मोपदेश सुना और अवसर पाकर अपने भवान्तरोंका कथन पूछा तथा यह भी पूछा, कि मदनमंजूषा और मघवाहनका मुझपर अत्यन्त प्रेम क्यों है ?

तब श्री मुनिने कहा—राजा सुनो ! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र आर्यखण्डमें मृणालपुर नामका एक नगर है, वहा राजा जितारि और रानी कनकावती सुखसे राज्य करते थे। इसी नगरमें श्रुतकीर्ति नामक ब्राह्मण और उसकी बन्धुमती नामकी स्त्री रहती थी। इनके प्रभावती नामकी एक पुत्री थी जिसने जैन गुरुके पास शिक्षा पाई थी।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वन—क्रीडाको गया था, सो वहापर उसकी स्त्रीको सांपने काटा, और वह मर गई। तब ब्राह्मण अत्यन्त शोकसे विह्वल होगया, और उदास रहने लगा। यह समाचार पाकर उसकी पुत्री प्रभावती वहा आई और अनेक प्रकारसे पिताको सम्बोधन करके बोली—पिताजी ! संसारका स्वरूप ऐसा ही है। इसमें इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग प्राय. हुआ ही करते हैं। यह इष्टानिष्ट कल्पना मोह भावोंसे होती है। यथार्थमें न कुछ इष्ट है, न अनिष्ट है, इसलिये शोकका त्याग करो। पश्चात् प्रभावतीने अपने पिताको जैन गुरुके पास सम्बोधन कराकर दीक्षा दिला दी। सो ब्राह्मणने प्रारम्भमें तपश्चरण किया, परन्तु पश्चात् चारित्रभ्रष्ट होकर यन्त्र मन्त्र तन्त्रादिके (व्यर्थके झगड़ों) में फस गया। विद्याके योगसे नई बस्ती बसाकर उसमें घर मांडकर रहने लगा और विषयासक्त हो स्वच्छन्द प्रवर्तने लगा। तब पुन. प्रभावती उसे सम्बोधन करनेके लिये वहा गई और कहा—पिताजी ! जिन दीक्षा लेकर इस प्रकारका प्रवर्तन अच्छा नहीं है। इससे इस लोकमें निंदा और परलोकमें दु ख सहना पड़ेंगे। यह सुनकर ब्राह्मण कुपित हुआ और उसे वनमें अकेली छोड़ दी। सो जहा प्रभावती नमस्कार मन्त्र जपती हुई वनमें बैठी थी, वहा वनदेवी आई और पूछा—बेटी ! तू क्या चाहती है ? तब प्रभावतीने कैलाशयात्रा करनेकी इच्छा प्रगट की।

यह सुनकर देवीने उसे कैलासपर पहुचा दिया। प्रभावती वहा भादों सुदी पांचमके दिन पहुची थी, और उस दिन पुष्पांजलि व्रत था, इसलिये स्वर्ग तथा पातालवासी देव भी वहा पूजन वन्दनादिके लिये आये थे। सो पद्मावतीदेवीने प्रभावतीका परिचय पाकर कहा—बेटी ! तू पुष्पांजलि व्रत कर इससे तेरा सब दु.ख दूर होगा। इस व्रतकी विधि इस प्रकार

है कि भादों सुदी ५ से ९ तक पाच दिन तक नित्य प्रति पच मेरुकी स्थापना करके चौबीस तीर्थंकरोंकी अष्टद्रव्यसे पूजा भिषेक करे, पाच अष्टक तथा पाच जयमाल पढे और 'ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धी अस्सीजिनालयेभ्यो नम ' इस मन्त्रका १०८ वार जाप करे, पाचमका उपवास करे, और शेष दिनोंमें रस त्यागकर ऊनोदर भोजन करे। रात्रिको रत्न जागरण करे, विषय कषायोंको घटावे, ब्रह्मचर्य रखे और घरका आरम्भ त्यागे। इस प्रकार पाच वर्षतक व्रत करके फिर उद्यापन करे, सो प्रत्येक प्रकारके उपकरण पाच पाच जिनालयमें भेंट देवे, पांच शास्त्र पधरावे, पाच श्रावकोंको भोजन करावे, चारो प्रकारके दान देवे, इत्यादि। यदि उद्यापन करनेकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इस प्रकार प्रभावतीने व्रतकी विधि सुनकर सहर्ष स्वीकार किया, और उसे यथाविधि ५ वर्ष तक पालन किया तथा उद्यापन भी किया इससे उसे बहुत शांति हुई पश्चात् पद्मावतीदेवीने उसे विमानमें बैठाकर उसके नगर मृणालपुरमें पहुचा दिया। वहा पहुचकर प्रभावतीने स्वयप्रभु गुरुके पास दीक्षा ली, और तप करने लगी, सो तपके प्रभावसे उसकी बहुत प्रशसा फैली यह प्रशसा उसके पितासे सहन नहीं हुई, और उसने उसे दु ख देनेको विद्याए भेजीं। सो विद्याए बहुत उपसर्ग करने लगीं, परतु प्रभावती रञ्च मात्र भी नहीं डिगी और अन्तमें सन्यासमरण करके अच्युत स्वर्गमे देव हुई। उसका नाम पद्मनाभ हुआ।

इसी बीचमे मृणालपुरकी एक रुक्मणी नामकी श्राविका मरकर उसी देवकी देवी हुई। सो ये दोनों सुख पूर्वक कालक्षेप करने लगे। एक दिन उस पद्मनाभ देवने विचारा, कि हमारा पूर्वजन्मका पिता मिथ्यात्वमें पड़ा है उसे सम्बोधन करना चाहिये। यह विचार कर उसके पास गया और अपना सब वृतान्त कहा, सो सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ, और सब प्रपच छोड़कर शात चित्त हुआ। पश्चात् जिनोक्त तपश्चरण किया, और समाधिसे मरण कर स्वर्गमे प्रभासदेव हुआ।

सो वह पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तू रत्नशेखर चक्रवर्ति हुआ है, और पद्मनाभकी देवी तेरी मदनमजूषा नामकी पट्टरानी हुई है। तथा प्रभासदेव वहासे चयकर यह तेरा मित्र मेघवाहन विद्याधर हुआ है। सो हे राजा! तूने पूर्वजन्ममें पुष्पाञ्जलि व्रत किया जिसके फलसे स्वर्गके सुख भोगकर यहां चक्रवर्ति हुआ है, और ये दोनो भी तेरे पूर्वजन्मके सम्बन्धी हैं, इससे इनका तुझपर परम स्नेह है।

यह सुनकर राजाने पुष्पाञ्जलि व्रत धारण किया और यात्रा करके घर आया, विधि सहित व्रत किया, पश्चात् बहुत कालतक राज्य करके संसारसे विरक्त होकर निज पुत्रको राज्यभार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली। और घोर तप करके केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा अनेक भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दिया। पश्चात् शेष कर्मोंको नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया। मदन मञ्जूषाने भी दीक्षा ले ली, सो तपकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। मेघवाहन आदि अन्य राजा भी यथायोग्य गतियोंको प्राप्त हुए। इसप्रकार और भी भव्यजीव श्रद्धा सहित व्रत पालेंगे तथा कषायोंको कृश करेंगे तो वे भी उत्तमोत्तम पदको प्राप्त होंगे।

पुष्पांजलि व्रत पालकर, प्रभावती गुणमाल। लहो सिद्ध पद अन्तमें, नमों त्रियोग सम्हाल ॥

श्री बारहसौ चौंतीस व्रतकी कथा।

वन्दू आदि जिनेन्द्र पद, मन वच तन सिर नाय। बारहसौ चौंतीस व्रत, कथा कहूं सुखदाय ॥

मगध देशमें राजगृही नगरका स्वामी राजा श्रेणिक न्यायपूर्वक राज्यशासन करता था। इसकी परम सुन्दरी और जिन धर्मपरायणा श्रीमती चेलना पट्टरानी थी, सो जब विपुलाचल पर महावीर भगवानका समवशरण आया तब राजा, प्रजा सहित वन्दनाको गया। और वन्दना स्तुति करके मनुष्योंकी सभामें बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा। पश्चात् राजाने पूछा—हे प्रभो! षोडश कारण व्रतसे तो तीर्थंकर पद मिलता ही है, परन्तु क्या अन्य प्रकार भी मिल सकता है, सो कृपाकर कहिये। तब गौतमस्वामीने कहा—राजन् सुनो! जम्बूद्वीपके आसपास लवण समुद्र है, सो इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें अवन्ती देश है। वहा उज्जैनीनगरी है, वहा हेमवर्मा राजा अपनी शिवसुन्दरी रानीसहित राज्य करता था।

एक दिन राजा वनक्रीडा करनेको वनमें गया था, और वहा चारण मुनियोंको देखकर नमस्कार किया तथा मनमें समताभाव धरकर विनय सहित पूछने लगा—भगवन्! कृपा करके यह बताइये कि मैं किस प्रकार तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करू? तब श्री गुरुने कहा—राजन्! तुम बारहसौ चौंतीस व्रत करो। यह व्रत भादो सुदी प्रतिपदा (१)से प्रारंभ होता है। १२३४ उपवास तथा एकाशन करना चाहिये। यह व्रत दश वर्ष और साढेतीन माहमें पूरा होता है और एकांतर

करे तो ५ वर्ष पौने दो मासमें ही पूर्ण होजाता है। व्रतके दिन रस त्यागकर नीरस भोजन करें, आरंभ परिग्रहका त्याग कर भक्ति और पूजामें निमग्न रहे। और "ॐ ह्रीं असियाउसा चारित्रशुद्धिव्रतेभ्यो नमः" इस मंत्रका १०८ बार जाप करे। जब व्रत पूरा हो जावे, तब उद्यापन करे। झारी, थाली, कलश आदि उपकरण चैत्यालयमें भेट करे, चौसठ ग्रन्थ पधरावे, चार प्रकारका दान करे, तथा १२३४ लाडू श्रावकोंके घर बांटे, पाठशालादि स्थापन करे, इत्यादि। और यदि उद्यापनकी शक्ति न होवे तो दूना व्रत करे। इसप्रकार राजाने व्रतकी विधि सुनकर उसे यथाविधि पालन किया, उद्यापन भी किया। अन्तमें समाधिमरण करके अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। वहांसे चयकर वह विदेहक्षेत्रकी विजयापुरीमें धनंजय राजाके यहां चन्द्रभानुप्रभु नामका तीर्थंकर पदधारी हुआ। उसके गर्भादिक पांच कल्याणक हुए। इस प्रकार राजा हेमवर्मा स्वर्गके सुख भोगकर तीर्थंकर पद प्राप्त करके इस व्रतके प्रभावसे मोक्ष गया। इसलिये हे श्रेणिक! तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिये यह व्रत भी एक साधन है। यह सुनकर राजा श्रेणिकने भी श्रद्धा सहित इस व्रतको धारण किया और षोडश कारण भावनाएं भी भाई सो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। अब आगामी चौबीसीमें ये प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष जावेंगे। इस-प्रकार और भी जो भव्यजीव इस व्रतका पालन करेंगे वे भी उत्तमोत्तम सुखोंको पाकर मोक्षपद प्राप्त करेंगे

बारहसौ चौबीस व्रत, हेमवर्म नृप पाल। नर सुरके सुख भोगकर, लही मुक्ति गुणमाल॥

श्री औषधिदान कथा।

जन्म जरा अरु मरणके, रोग रहित जिन देव। औषधि दानतनी कथा, कहूं करूं तिन सेव॥

सोरठ देशमें द्वारका नगरी है। वहां नवमें नारायण श्रीकृष्णचन्द्र राज्य करते थे। इनके सत्यभामा तथा रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियां थीं, जो परस्पर बहिन भावसे (प्रेमपूर्वक) रहती थीं। श्री कृष्णराय प्रजा पालन और नीति न्यायादि कार्योंमें सम्पन्न थे। एक दिन वे श्रीकृष्णजी स्वजनों सहित श्री नेमिनाथ प्रभुकी वन्दनाको जारहे थे कि मार्गमें एक मुनि अत्यन्त क्षीणशरीरी ध्यानस्थ देखे, सो करुणा और भक्तिसे चित्त आर्द्रित होगया और अपने साथवाले वैद्यसे कहा

कि तुम रोगका निदान करके उत्तम प्रासुक औषध तैयार करो जो कि श्री मुनिरायको आहारके साथ दी जाय, जिससे रोग मिटकर उनके रत्नत्रयकी वृद्धि हो। वैद्यने राजाकी आज्ञा प्रमाण औषधि तैयार की और जब श्रीमुनिराज चर्याको निकले तो कृष्णरायने विधिपूर्वक पड़गाह कर नवधा भक्तिसहित श्री मुनिरायको भोजनके साथ, औषधियुक्त तय्यार किये हुए लड्डूका आहार दिया, जिससे कृष्णरायके घर पंचाश्चर्य हुए और औषधिका निमित्त पाकर मुनिराजका रोग भी उपशम हुआ। श्री कृष्णजीने औषधिदानके प्रभावसे (वात्सल्य भावके कारण) तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। किसी एक दिन श्री कृष्णराय पुन मुनि दर्शनको गये सो भाग्यवशात् वे ही मुनि एक शिलापर ध्यानस्थ दिखाई दिये। तब भक्तिसहित वन्दना करके राजाने मुनिराजके शरीरकी कुशल पूछी। तब शरीरसे सर्वथा निष्प्रेम उन मुनिराजने कहा—राजन्! शरीर तो क्षणभगुर है, इसकी कुशल अकुशलता ही क्या! ज्ञानी पुरुष इसे पर वस्तु जानकर इसमें ममत्व भाव नहीं रखते हैं।

नाशवान देह तो किसी दिन निश्चयसे नष्ट होवेगा और यह आत्मा तो अविनाशी टकोत्कीर्ण स्वभावसे ज्ञाता दृष्टा है। सो उसका पुद्गलादि पर पदार्थ कुछ भी बाधा नहीं पहुचा सकते है इत्यादि। इसप्रकार मुनिराजके वचनोंसे राजाको बहुत आनन्द हुआ परतु वह वैद्य जिसने औषधि बनाई थी, अपनी प्रशसा न सुनकर तथा औषधि प्रयोगपर उपेक्षा भाव देखकर कुपित हुआ और मुनिकी कृतघ्नी आदि शब्दोंसे निंदा करने लगा। इससे तिर्यंच आयुका बन्ध करके उसी वनमे बन्दर (कपि) हुआ सो एक दिन जब कि वह बन्दर (वैद्यका जीव) वनमे एक वृक्षसे उछल कर दूसरेपर, और दूसरेसे तीसरे वृक्षपर जा रहा था, तब पवनके वेगसे उस वृक्षकी एक डाली जिसके नीचे मुनिराज बैठे थे, टूटकर उन पर पड़ी और उससे एक बड़ा घाव मुनिके शरीरमे होगया, जिससे रक्त बहने लगा।

यह देखकर वह बन्दर कौतुकवश वहा आया और देखा कि मुनिराजके ऊपर वृक्षकी एक बडी डाल गिर पड़ी है और उससे घाव होकर लोहू बह रहा है। मुनिको देखकर बन्दरको जातिस्मरण होगया जिससे उसने जाना कि पूर्वभवमे मै वैद्य था, और मैने इन्हीं मुनिराजकी औषधि की थी। परन्तु उनके मुखसे अपनी प्रशसा न सुनकर मैने मान कषायवश उनकी निंदा की थी जिससे कि मै बन्दरकी योनिको प्राप्त हुआ हू। यह विचार कर उस बन्दरने तुरन्त ही मुनिराजके

उससे ज्यों त्यों करके वह वृक्षकी डाली अलग करदी। और जड़ीबूटी (औषधि) लाकर मुनिके घावपर लगाई, जिससे मुनिराजको आराम हुआ। पश्चात् मुनिराजने उसे धर्मोपदेश दिया और अणुव्रत ग्रहण कराये सो उसने व्रतपूर्वक आयुके अन्तमें सात दिन पहिले सन्यास मरण किया, सो प्राण त्यागकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

इसप्रकार औषधिदानके प्रभावसे श्रीकृष्णने तीर्थंकर प्रकृति बांधी और बन्दर भी अणुव्रत ग्रहण कर स्वर्ग गया। यदि अन्य भव्य जीव इसी प्रकार आहार, औषधि, अभय और विद्यादानमें प्रवृत्त होंगे तो अवश्य ही उत्तमोत्तम सुखोंको प्राप्त करेंगे।

औषधिदान प्रभावसे, श्रीकृष्ण नाराय। अरु कपि पायो विमल सुख, देहु सबहि मन लाय ॥

श्री परधन लोभ रखनेवालेकी कथा।

वीतरागके पद नमूं, नमूं गुरु निर्ग्रंथ। जा प्रसाद पर लोभ नश, मिले मुक्तिको पथ ॥

कपिला नगरीमें रत्नप्रभ राजा राज्य करता था इसकी रानी विद्युतप्रभा थी। इसी नगरमें जिनदत्त और पिण्याकगंध नामके दो साहूकार थे। जिनदत्त तो धर्मात्मा और उदारचित्त था, परन्तु पिण्याकगंध बड़ा लोभी और पापी था, इसकी स्त्री भी इसीके समानथी। एक समय राजाने नगरमें तालाब खोदनेकी आज्ञा की सो तालाब खुदने लगा। जब कुछ गहरा खुदा तो उसमेंसे बहुतसे सोनेके खम्भे निकले, जो मिट्टी दबे रहनेके कारण मैले होरहे थे और लोहेके समान प्रतीत होते थे। सो मजूर लोग उन्हें उठाकर बेचने ले गये। एक खम्भा इनमेंका सेठ जिनदत्तने भी लिया और जब पीछे जांच की तो सोनेका निकला, परंतु मूल्य लोहेका दिया था, तब शेष द्रव्यको अपना न समझ कर उसने धर्मकार्योंमें लगा दिया। इसप्रकार वह परधनसे निवृत्तलोभ होकर सानन्द रहने लगा। परन्तु पिण्याकगंध जिसने बहुतसे खम्भे लोहेकी कीमतमें ले रखे थे और सोनेके जानता भी था उसने द्रव्यमें मोहित होकर उनको संचित कर रखे।

एक दिन राजा तालाव देखनेको गया और एक खम्भा और भी पडा देखा सो जाच करने पर सोनेका प्रतीत हुआ। इसके पीछे और भी खुदाया तो वही एक पेटी जिसमे ताम्रपत्र था निकली। उस ताम्रमे १०० खम्भोंकी वात लिखी थी। तब राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की तो मालूम हुआ कि एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने मोल लिया है, और ९८ पिण्याकगन्धने लिये हैं।

राजाने दोनों सेठोंको बुलाया सो जिनदत्त सेठने तो स्वीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाव राजाको दिखाकर निर्दोषरीत्या छुटकारा पागया। इतना ही नहीं राजाने उनकी सचाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पारितोषिक भी दिया। परन्तु पिण्याकगन्धने स्वीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका सब द्रव्य लुटा लिया। वे सोनेके ९८ खम्भे जो लोहेकी कीमतमें लिये थे सो तो गये ही, परन्तु साथमे और भी २ करोड रुपयोंकी सम्पत्ति भी गई।

पिण्याकगन्ध इस दुःखको सहन करनेमे असमर्थ था इसलिये उसने अपने पावपर पत्थर पटककर आत्मघात कर छोडे और मरकर रौद्रध्यानसे छठें नर्कमे गया।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर विरक्त होगया और तपकर आयुके अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गमे देव हुआ। वास्तवमे लोभ बुरी वस्तु है। और तो क्या, दशम गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणी नहीं चढने देता है। और उपशम हुआ उपशातमोही मुनिको ११ वें गुणस्थानसे प्रथममे गिरा देता है। कविने कहा भी है "लोभ पापका बाप बखाना।" इसी लोभसे सत्यघोष भी मरकर राजाके भंडारका साप हुआ था। और भी जो इस प्रकारका पाप करता है उसे परभवमे तो दुःख होता ही है, परन्तु इस भवमे भी राजा व पंचोसे दण्डित होता है, दुःख पाता है, व अपनी प्रतीति खो बैठता है, इसलिये पर धनका लोभ त्यागनेसे भी निःशङ्कता और सुख होता है।

पिण्याकगन्ध नरकहिं गयो, परधन लोभ पसाय। स्वर्ग गये जिनदत्तजी, परधन लोभ नशाय ॥

उपरसे ज्यों त्यों करके वह ...

श्री कवलचान्द्रायण (कवलाहार) व्रत कथा।

पूर्वमें भूमण्डलमें चन्द्रपुरी नगरमें कमलनाथ नामक प्रजापालक राजा था। जिसकी पतिव्रता रानीका नाम विनयश्री था, जो प्रजाका पालन न्याय-नीतिसे करते थे। इतनेमें एक दिन राजा रानी वन उपवनमें क्रीडा करते थे तो वहां उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचन्द्र नामक मुनि महाराजको देखा तो दोनोंने वहीं जाकर मुनिश्रीको वन्दना की और उनके चरणमें विनयसे बैठे। फिर राजाने मुनीश्वरसे पूछा-महाराज! श्री कवलचान्द्रायण नामका व्रत कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है तथा पूर्वमें किसने यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह कृपा करके बतलाइये। तब मुनिराज बोले—

श्री कवलचान्द्रायणव्रत एक माहका होता है व किसी भी महिनेमें इस प्रकार किया जाता है। प्रथम अमावस्याके दिन उपवास करना, फिर एकमके दिन एक ग्रास, दूजके दिन दो ग्रास, इसप्रकार चौदशको १४ ग्रास लेकर पूनमको उपवास करे फिर वदी १ को १४ दूजको १३ इस प्रकार घटाते जाकर वदी १४ को एक ग्रास आहार लेकर अमावस्याको उपवास करे तथा इन दिनोंमें आरम्भ व परिग्रहका त्याग करके श्री मंदिरजीमें श्री चन्द्रप्रभुका पञ्चामृताभिषेक करके श्री चन्द्रप्रभुकी पूजा देव, शास्त्र, गुरुपूजा पूर्वक करें। तथा सारा दिन धर्मसेवनमें तथा शास्त्र स्वाध्यायादिमें व्यतीत करें। प्रतिपदाको पारणाके दिन किसी पात्रको भोजन कराकर पारणा करें। और अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकारका दान करें और यथाशक्ति उद्यापन भी करें जिसमें ३० फल और ३० शास्त्र वितरण करें।

श्री महावीर प्रभु राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्! महातपस्वी श्री बाहुबलिजीने इस कवलचान्द्रायण व्रतको किया था, जिसके प्रभावसे उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेवजीकी पुत्री ब्राह्मी सुन्दरीने भी यह व्रत किया था जिसके प्रभावसे वे दोनों स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुए थे, और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मुनिपद लेकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया था। अत जो कोई मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविका यह व्रत करेंगे वे यथाशक्ति स्वर्ग मोक्षसुखको प्राप्त करेंगे और जो पञ्च पाप, सात व्यसन और चार कषायोंको त्यागकर शुद्ध भावसे इस व्रतको करेंगे वे एक ... मोक्षको जावेंगे।

एक दिन राजा तालाब देखनेको गया और एक खम्भा और भी पड़ा देखा सो जाच करने पर सोनेका प्रतीत हुआ। इसके पीछे और भी खुदाया तो वहीं एक पेटी जिसमे ताम्रपत्र था निकली। उस ताम्रमे १०० खम्भोंकी बात लिखी थी। तब राजाने शेष खम्भोंकी तलाश की तो मालूम हुआ कि एक खम्भा तो जिनदत्त सेठने मोल लिया है, और ९८ पिण्याकगन्धने लिये हैं।

राजाने दोनों सेठोंको बुलाया सो जिनदत्त सेठने तो स्वीकार कर लिया और उस खम्भेसे उत्पन्न द्रव्यका हिसाब राजाको दिखाकर निर्दोषरीत्या छुटकारा पागया। इतना ही नहीं राजाने उनकी सच्चाईसे प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पारितोषिक भी दिया। परन्तु पिण्याकगन्धने स्वीकार नहीं किया, इससे राजाने उसके घरका सब द्रव्य लुटवा लिया। वे सोनेके ९८ खम्भे जो लोहेकी कीमतमें लियेथे सो तो गये ही, परन्तु साथमें और भी २७ करोड़ रुपयोंकी सम्पत्ति भी गई।

पिण्याकगन्ध इस दुःखको सहन करनेमें असमर्थ था इसलिये उसने अपने पावपर पत्थर पटककर आत्मघात कर प्राण छोड़े और मरकर रौद्रध्यानसे छठवें नर्कमें गया।

जिनदत्त सेठ यह चरित्र देखकर विरक्त होगया और सवकर आयुके अन्तमे समाधिमरण करके स्वर्गमें देव हुआ। वास्तवमें लोभ बुरी वस्तु है। और तो क्या, दशम गुणस्थानका अव्यक्त लोभका उदय भी श्रेणी नहीं चढ़ने देता है। और उपशम हुआ उपशांतमोही मुनिको ११ वे गुणस्थानसे प्रथममें गिरा देता है। कविने कहा भी है "लोभ पापका बाप बखाना।" ...री लोभसे सत्यघोष भी मरकर राजाके भंडारका सांप हुआ था। और भी जो इस प्रकारका पाप करता है उसे परभवमें तो ...ख होता ही है, परन्तु इस भवमें भी राजा व पंचोंसे दण्डित होता है, दुःख पाता है, व अपनी प्रतीति खो बैठता है, ...लिये पर धनका लोभ त्यागनेसे ही निराकुलता और सुख होता है।

जिवो ... मारफिं गयो, परधन लोभ पसाय। स्वर्ग गये जिनदत्तजी, परधन लोभ नशाय॥

श्री कवलचान्द्रायण (कवलाहार) व्रत कथा ।

पूर्वमें भूमण्डलमें चन्द्रमा कमलाप नामक प्रजापालक राजा था । जिसकी पतिव्रता रानीका नाम विजयश्री था, जो प्रजाका पालन न्याय-नीतिसे करते थे। इनमेंसे एक दिन राजा रानी वन उपवनमें क्रीडा करते थे तो वहां उन्होंने एक स्थान पर श्री शुभचन्द्र नामक मुनि महाराजको देखा तो दोनोंने वहीं जाकर मुनिश्रीको वन्दना की और उनके चरणमें विनयसे बैठे । फिर राजाने मुनीश्वरसे पूछा-महाराज ! श्री कवलचान्द्रायण नामका व्रत कैसे करना चाहिये, उसकी विधि क्या है तथा पूर्वमें किसने यह व्रत करके उत्तम फल प्राप्त किया था, यह कृपा करके बतलाइये । तब मुनिराज बोले—

श्री कवलचान्द्रायणव्रत एक माहका होता है व किसी भी महिनेमें इस प्रकार किया जाता है । प्रथम अमावस्याके दिन उपवास करना, फिर एकमके दिन एक ग्रास, दूजके दिन दो ग्रास, इसप्रकार चौदसको १४ ग्रास लेकर पूनमको उपवास कर फिर वदी १ को १४ दूजको १३ इस प्रकार घटाते जाकर वदी १४ को एक ग्रास आहार लेकर अमावस्याको उपवास करें तथा इन दिनोंमें आरम्भ व परिग्रहका त्याग करके श्री मंदिरजीमें श्री चन्द्रप्रभुका पञ्चामृताभिषेक करके श्री [illegible] त, गुरुपूजा पूर्वक करें । तथा सारा दिन धर्मसेवनमें तथा शास्त्र स्वाध्यायादिमें व्यतीत करें ।

[illegible] मी पात्रको भोजन कराकर पारणा करें । और अपनी शक्ति अनुसार चारों प्रकारका दान करें [illegible] करें जिसमें ३० फल और ३० शास्त्र वितरण करें ।

श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! महातपस्वी श्री बाहुबलिजीने इस कवलचान्द्रायण व्रतको [illegible] केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तथा श्री ऋषभदेवजीकी पुत्री ब्राह्मी सुन्दरीने भी यह व्रत किया [illegible] लिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुए थे, और वहांसे चयकर मनुष्य भव लेकर मुनिपद [illegible] या था । अतः जो कोई मुनि, आर्जिका, श्रावक, श्राविका यह व्रत करेंगे वे यथाशक्ति स्वर्ग [illegible] पाप, सात व्यसन और चार कषायोंको त्यागकर शुद्ध भावसे इस व्रतको करेंगे वे एक